सरल

मानव धर्म

भाग प्रथम

सम्पादक :

महेन्द्र सेन

प्रकाशक :

आदर्श समाज, दिल्ली

जून, १९६४

विक्रेता :

शकुन प्रकाशन

११, दरियागंज, दिल्ली

मूल्य :

साठ पैसे

मुद्रक :

राजहंस प्रेस, दिल्ली-६

भूमिका

धर्म क्या है और क्या नहीं है, इस सम्बन्ध में धार्मिक लोगों में भी बड़ा मतभेद है। फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि जो केवल अपने लिए जीता है, उसका जीवन घटिया है। इस के विपरीत जो लोग दूसरों के लिए जीते हैं, वे महान हैं।

केवल धन या समृद्धि अपने में अन्तिम लक्ष्य नहीं हो सकते। जीवन का प्रतिमान बढ़ने के साथ-साथ हमें यह भी बुद्धि आनी चाहिए कि हम बढ़ी हुई सुविधाओं का किस प्रकार उपयोग करें। इसी को नैतिक बुद्धि कहते हैं। सब का वेतन बढ़े, पर बढ़ा हुआ वेतन किस काम आए, अच्छी पुस्तकें खरीदने में या नशे की चीजें खरीदने में। इन्हीं बातों को समझने और जानने के लिए अच्छा साहित्य पढ़ना चाहिए, अच्छे लोगों का साथ करना चाहिए। इस नाते मैं इस साहित्य का स्वागत करता हूं।

मन्मथनाथ गुप्त

दो शब्द

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कुछ ऐसी हवा चली कि सारा ध्यान इसी पर लग गया कि उत्पादन बढ़ाओ, इंजीनियर, डॉक्टर और ट्रैक्टर पैदा करो। फल यह हुआ कि शिक्षा पैसा कमाने मात्र के उद्देश्य से दी जाने लगी। इस बात पर किसी ने ध्यान नहीं दिया कि बच्चों को जब तक सदाचारी नहीं बनाया जाएगा और मानवता के आधारभूत सिद्धान्त नहीं समझाए जाएंगे, तब तक न तो वे अच्छे नागरिक बन सकेंगे और न सही मानों में राष्ट्रनिर्माता। चरित्रवान नागरिक नहीं होंगे तो भ्रष्टाचार, चोरी, ठगी, मुनाफाखोरी और हिंसा आदि समाज के कलंकों का बोलबाला रहेगा और राष्ट्रोन्नति की योजनाएं थोथी रह कर एक ओर धरी रह जाएंगी।

मैं जब जैन हायर सेकेंड्री स्कूल दरियागंज का मैनेजर चुना गया तो मुझे सदाचार शिक्षा का अभाव बुरी तरह खटका और एक वर्ष के प्रयत्न के बाद यह पुस्तक प्रस्तुत करने में सफल हुआ हूं। आदर्श समाज ने, जिसका मैं भी एक अदना सदस्य हूं, इस योजना का हार्दिक स्वागत किया और समस्त आर्थिक भार वहन करने का निर्णय किया। यह पुस्तक वास्तव में आदर्श समाज की ही देन है।

चूंकि दर्शन सम्बंधी मेरा ज्ञान नगण्य था अतएव मूल सामग्री पं० सुमेर चन्द शास्त्री न्यायतीर्थ ने बड़ी लगन से

संकलित की और फिर भरसक मैंने उसे सरल भाषा में स्कूल के विद्यार्थियों के योग्य शैली में पुनः लिखने का प्रयास किया है। शिक्षक इस सामग्री को उदाहरणों व कथाओं का सहारा लेकर और भी रोचक बना सकते हैं। यदि सप्ताह में एक बार ही इस विषय की क्लास ली जाए तो एक वर्ष में सुविधा से यह कोर्स पूरा हो जाएगा। चूंकि आठवीं और ग्यारहवीं कक्षा के छात्रों को बोर्ड की परीक्षा देनी होती है इस लिए उनका कोर्स कम रक्खा गया है कि जिस से वह छमाही परीक्षा तक ही समाप्त हो सके। आवश्यकता इस बात की भी है कि इस विषय पर विशेष पुरस्कार घोषित कर के बच्चों को इस का गंभीर अध्ययन करने के लिए प्रोत्साहित किया जाए।

स्पष्ट है कि धार्मिक दृष्टिकोण से इस पुस्तक का आधार एकांगी है। परन्तु यह कोई नियम नहीं है कि यदि एक बात सत्य है तो और कुछ सत्य हो ही नहीं सकता अथवा यदि कुछ बातें अच्छी हैं तो और कुछ अच्छा हो ही नहीं सकता। इसलिए, उद्गम चाहे जो हो, जो गुण कल्याणकारी हों, वे सर्वग्राह्य होने ही चाहिएं। पाठकों से इस ओर उदारता की मैं सविनय प्रार्थना करता हूं। प्रसिद्ध साहित्यकार श्री मन्मथनाथ गुप्त ने भूमिका लिखने की कृपा की है, मैं उन का अनुग्रहीत हूं।

दिल्ली-५ मई, १९६४ महेन्द्र सेन

णमोकार मंत्र (मूल)

णमुक्कारो

णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आयरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्वसाहूणं
एसो पंच नमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं

मंगलं

अरिहंता मंगलं
सिद्धा मंगलं
साहू मंगलं
केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं

णमोकार मंत्र (अर्थ)

नमस्कार

अरिहन्तों को नमस्कार
सिद्धों को नमस्कार
आचार्यों को नमस्कार
उपाध्यायों को नमस्कार
लोक (संसार) में सब साधुओं को नमस्कार

यह पंच नमस्कार सब पापों को नाश करने वाला है और सब मंगलों में पहला मंगल है ।

मंगल

अर्हन्त मंगलमय हैं
सिद्ध मंगलमय हैं
साधु मंगलमय हैं
केवली ने जो धर्म बताया वह मंगलमय है ।

लोगुत्तमा

अरिहंता लोगुत्तमा

सिद्धा लोगुत्तमा

साहू लोगुत्तमा

केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा ।

सरणं

अरिहन्ते सरणं पवज्जामि

सिद्धे सरणं पवज्जामि

साहू सरणं पवज्जामि

केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि ।

लोकोत्तम

अर्हन्त संसार में सबसे श्रेष्ठ हैं

सिद्ध संसार में सबसे श्रेष्ठ हैं

साधु संसार में सबसे श्रेष्ठ हैं

केवल ज्ञानी ने जो धर्म बताया वह संसार में सब से श्रेष्ठ है ।

शरण

अर्हन्तों की शरण स्वीकार करता हूं

सिद्धों की शरण स्वीकार करता हूं

साधुओं की शरण स्वीकार करता हूं

केवल ज्ञानी ने जो धर्म बताया उसकी शरण स्वीकार करता हूं ।

मेरी भावना

जिसने रागद्वेष, कामादिक जीते सब जग जान लिया,
सब जीवों को मोक्ष मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया।
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो,
भक्तिभाव से प्रेरित हो यह चित्त उसी में लीन रहो ॥

विषयों की आशा नहिं जिनके, साम्यभाव नित रखते हैं,
निज-पर के हित साधन में जो, निशदिन तत्पर रहते हैं।
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं,
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुःख समूह को हरते हैं ॥

रहे सदा सतसंग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे,
उनही जैसी चर्चा में यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे।
नहीं सताऊं किसी जीव को, झूठ कभी नहीं कहा करूं,
परधन, वनिता पर न लुभाऊं, सन्तोषामृत पिया करूं ॥

अहंकार का भाव न रक्खूं, नहीं किसी पर क्रोध करूं,
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्या भाव धरूं।

रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूं,
बने जहां तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूं ।।

सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे,
वैर भाव अभिमान छोड़ जग, नित्य नए मंगल गावे ।
घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावे,
ज्ञानचरित उन्नति कर अपना, मनुज जन्म फल सब पावें ।।

ईति-भीति व्यापे नहिं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करे,
धर्म निष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे ।
रोग, मरी, दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे,
परम अहिंसा धर्म जगत में, फैल सर्वहित किया करे ।।



देश वन्दना

हिन्द के जवान हम

हिन्द के जवान हम, हिन्द की हैं शान हम।
हिन्द के निशान को, बुलन्द हम किये चलें ॥

(१)

प्रबल ज्वालमाल हो, आंधियां कराल हों।
जलधि, गगन, भूमि पर, कलह प्रलय के जाल हों।
किन्तु हम रुकें नहीं, चले चलें, बढ़े चलें ॥ हिन्द० ॥

(२)

हिन्द हेतु जान दें, हिन्द हेतु प्राण दें।
हिन्द हेतु हम सभी, सहर्ष रक्त दान दें।
जय हिन्द, जय हिन्द, बोलते चले चलें ॥ हिन्द० ॥

विषय सूची-भाग प्रथम

धर्म क्या है ?

"वत्थु सहाओ धम्मों"

वस्तु का स्वभाव ही उसका धर्म है। जैसे आग का स्वभाव जलाना है और वही उसका धर्म है, या पानी का स्वभाव शीतल है तो वही उसका धर्म है। इसी तरह आत्मा का स्वभाव ज्ञान है और वही उसका धर्म है। धर्म वही है जो आदमी को ठीक रास्ते पर ले जाए और उसको सुख और शान्ति पहुंचाने में सहायता दे।

धर्म के तीन अंग हैं :

(१) सम्यक दर्शन अर्थात् ठीक बातों पर विश्वास और भक्ति,

(२) सम्यक ज्ञान अर्थात् किसी भी चीज का ठीक और सही ज्ञान।

(३) सम्यक चारित्र यानि सम्यक दर्शन और सम्यक ज्ञान से जानी गई ठीक बातों पर चलना या उनके अनुसार अपने चरित्र को बनाना।

इस प्रकार धर्म केवल किसी देवी देवता की पूजा से या यन्त्र मन्त्र से या तीर्थ स्नान से पूरा नहीं होता बल्कि सच्चा धर्म तो वह है जो आदमी के रहन-सहन चरित्र सभी को हर तरह से सही रास्ते पर लगाये, उसको अच्छा नागरिक बनाए और उसकी आत्मा को शान्ति पहुँचाए।

सुख और शान्ति किस में है ? क्या अच्छा भोजन करने में है ? अगर ऐसा है तो किसी आदमी को चौबीस घंटे अच्छा भोजन ही खिलाते रहो तो क्या वह सुखी होगा ? थोड़ी देर के बाद ही उसका पेट अफर जाएगा और वह कहेगा कि मेरा खाना बन्द करो यह तो मुझे दु:ख दे रहा है। कैसा भी स्वादिष्ट क्यों न हो अब और मैं नहीं खा सकता। इसी तरह क्या सिनेमा देखने में सुख है ? अगर किसी को चौबीस घण्टे सिनेमा ही दिखाए जाओ तो सोचो उसका क्या हाल होगा।

परन्तु क्या तुमने कभी सुना है कि किसी को ज्यादा ज्ञान प्राप्त हो जाने से बदहजमी हो गई हो ? आदमी जितना ज्ञान बढ़ाता है उसको उतना ही सुख मिलता है और ज्यादा ज्ञानी पुरुष ही दूसरों से बड़ा और अच्छा समझा जाता है।

जिनको साधारण दुनिया में ऐशो आराम की चीज

समझा जाता है वह हमारे शरीर को थोड़ी देर को तो सुख पहुँचाते मालूम पड़ते हैं लेकिन फिर वही अशान्ति पैदा हो जाती है। जो रास्ता सच्चे सुख और शान्ति यानि ज्ञान को तरफ ले जाए वही धर्म है।

एक बात और—जैसे तुम सुख और शान्ति चाहते हो, वैसे ही और लोग भी सुख और शान्ति चाहते हैं। यदि तुमने कोई ऐसा काम किया जिससे किसी दूसरे को दुःख पहुँचा तो वह भी अधर्म है। धर्म का सही मतलब है कि तुम्हें भी सुख पहुंचे और दुनिया के सब जीवों को भी सुख पहुंचे।



सत्संगति से लाभ व कुसंगति से हानि

"महापुरुषों का
संसर्ग किस के लिए
उन्नति कारक नहीं होता
कमल के पत्ते पर गिरा हुआ
पानी मोती की शोभा पाता है"

जैसे उपजाऊ जमीन होती है वैसे ही बचपना होता है। जैसा बीज जमीन में बोया जाएगा वैसे ही पेड़ लगेंगे और उनमें वैसे ही फल लगेंगे। इसी प्रकार बच्चों का साथ या संगति जैसे लोगों के साथ होगी वैसे ही गुण उनमें पैदा होंगे। वही पानी की बूंद कमल के पत्ते का साथ पाकर मोती का रूप पाती है, वही बूंद यदि जलते हुए लोहे पर डाल दी जाए तो भस्म हो जाती है।

इसी तरह जो बच्चे अच्छे काम करने वाले बच्चों के साथ रहते हैं उनमें अच्छी आदतें पड़ती हैं और वे अच्छी बातें सीखते हैं और जो बुरे काम करने वाले

लोगों के साथ रहते हैं उनमें उन्हीं के जैसे बुरे काम करने की आदतें पड़ जाती हैं और वे अपनी जिन्दगी बिगाड़ लेते हैं। इसलिए बच्चों को बुरी आदतों वाले बच्चों से या बुरे काम करने वाले लोगों से सदा दूर रहना चाहिए।

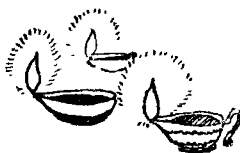
सत्संग का मतलब है अच्छे काम करने वालों से दोस्ती रखना, उनके साथ रहना। किसी काम को सीखने की दो रीतियां हैं। या तो हम दूसरे लोगों से कोई बात सीखते हैं या किताबें पढ़ कर। इनमें भी उन बातों का प्रभाव बच्चों पर ज्यादा पड़ता है जो वह दूसरे लोगों को करते हुए देखते हैं। बिना जाने ही बच्चा जो कुछ देखता है उनको वैसा ही करने की कोशिश करता है। अगर वह बुरे आदमियों के संग रहा तो उसका वही हाल होता है जो गंदी हवा में रहने वाले का होता है यानि उसको भी वही बीमारी लग जाती है जिसके कीटाणु उस गंदी हवा में होते हैं। अगर वह साफ़ हवा में रहेगा तो वह उस बीमारी से बचा रहेगा।

बुरी संगति बीमारी से भरी बदबूदार हवा के समान है जो बच्चे उसमें रहेंगे उनके चरित्र को जरूर तरह-तरह की बीमारियाँ लगेंगी। कुछ बच्चे

यह घमण्ड कर बैठते हैं कि हम तो अपने मन के पक्के हैं हमारे ऊपर दूसरों का कोई असर नहीं पड़ता। यह बात बिल्कुल गलत है। बार-बार रस्सी की रगड़ से पत्थर में भी निशान पड़ जाता है। बार-बार अच्छी बातें सुनने को मिलेंगी तो अच्छे बनोगे और बुरी बातें सुनते रहोगे तो बुरे ही बनोगे। कहावत है कि—

"काजल की कोठरी में कैसो हू सयानो जाए,
एक लीक काजर की लागि है पै लागि है"

अर्थात् ऐसी कोठरी में जो बिल्कुल काजल से भरी है कितना ही होशियार आदमी क्यों न घुसे उसके थोड़ी बहुत स्याही जरूर लगेगी। इसलिए कुसंगति की काजल की कोठरी से दूर रहना ही अच्छे बच्चों का काम है।



भारत में धर्म के आदि प्रवर्त्तक भगवान ऋषभदेव

ऋषभ देव अयोध्या के राजा नाभिराय के पुत्र थे। उनकी माता का नाम मरुदेवी था। जिस समय उनका जन्म हुआ उस समय तक संसार में कल्पवृक्ष होते थे। आदमी की हर आवश्कता को कल्पवृक्ष पूरी करते थे। परन्तु भगवान ऋषभ देव के जन्म के कुछ दिन बाद ही कल्पवृक्ष सूखने लगे। तब जनता को यह चिन्ता हुई कि अब भोजन, पानी, वस्त्र, इत्यादि कैसे मिलेगा।

जनता को दु:खी देख कर भगवान ऋषभ देव ने उनको भोजन के लिए खेती करके अनाज पैदा करना सिखाया। शत्रु से अपनी रक्षा करने के लिए अस्त्र-शस्त्र चलाना सिखाया। जिससे जनता बुद्धिमान बने,

उन्होंने लिखने-पढ़ने और विद्या सीखने की व्यवस्था की। पशुपालन के द्वारा दूध, दही, घी इत्यादि पैदा करना सबसे पहले मनुष्य को भगवान ऋषभदेव ने ही सिखाया। व्यापार, शिल्प और सेवा करके अपना पालन करना भी मनुष्य ने सबसे पहले तभी सीखा। इस तरह उन्होंने कठिनाई में पड़ी हुई जनता को जीवित रहने के साधन दिखाए और इसी कारण उनको प्रजापति कहा जाता है।

समाज में जो जैसा कार्य करता है उसके अनुसार ही भगवान ऋषभदेव ने प्रजा को चार भागों में बांटा जो विद्याध्यन करते थे और अन्य लोगों को भी पढ़ना लिखना सिखाते थे उनको ब्राह्मण कहा जाता था और जो अस्त्र-शस्त्र में कुशल बन कर देश की रक्षा करने के लिए अपनी जान तक देने के लिए तैयार रहते थे उनको क्षत्री कहा जाता था। इसी प्रकार जो लोग व्यापार करते थे उनको वैश्य तथा जो केवल सेवा करने के ही योग्य होते थे उनको शूद्र कहा गया।

जैन लोग भगवान ऋषभदेव को अपने धर्म का चलाने वाला मानते हैं और इसीलिए उनको आदिनाथ भी कहा जाता है। वे २४ तीर्थंकरों में सबसे पहले तीर्थंकर थे। हिन्दू पुराणों में भी जिन २४ अवतारों

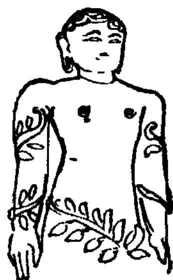
का नाम है उनमें भगवान ऋषभदेव को आठवां अवतार बताया गया है।

भगवान ऋषभदेव की नन्दा और सुनन्दा नाम की दो रानियां थीं और उनके अनेक पुत्र पुत्रियां हुईं। उनमें से सबसे बड़े पुत्र भरत, जो रानी नन्दा के पुत्र थे, सारे भारत को जीत कर चक्रवती राजा हुए और उन्हीं के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। दूसरे पुत्र, जो रानी सुनन्दा के पुत्र थे, घोर तपस्या करके मोक्ष गए। उनकी एक ५७ फुट ऊँची प्रतिमा मैसूर राज्य के श्रवणवेलगोल नामक गांव में एक पहाड़ी पर बनी हुई है। इस प्रतिमा को गोमटेश्वर भी कहते हैं। यह संसार की सबसे सुन्दर प्रतिमाओं में गिनी जाती है और सारी दुनिया से यात्री उसे देखने के लिए आते हैं।

भगवान ऋषभदेव के राज्य में प्रजा बड़े सुख से रहती थी। एक दिन की बात है कि एक लड़की जिस का नाम नीलांजना था, दरबार में नाचते-नाचते अकस्मात् मर गई। उसकी मृत्यु से भगवान ऋषभदेव को बड़ा दुःख हुआ और वह समझ गए कि यह संसार असार है और इससे छुटकारा पाने का रास्ता ढूंढ़ना चाहिए। इसलिए भगवान ऋषभदेव राजपाट अपने

पुत्र भरत को सौंप कर मुनि हो गए और घोर तपस्या करके उन्होंने सबसे ऊँचा ज्ञान जिसे केवल ज्ञान कहते हैं प्राप्त किया और फिर सब जीवों को उपदेश दिया। वह जिस भाषा में बोलते थे उसको मनुष्य, पशु-पक्षी, आदि सब अपनी-अपनी भाषा में समझ लेते थे।

उसके बाद जब उनकी आयु पूरी हो गई तो उनको मोक्ष हुआ और वह पहले तीर्थंकर कहलाए।



भोजन की पवित्रता और मांस खाने से हानियां

भोजन हम इसलिए करते है कि हमारा शरीर और उसके सब अंग ठीक-ठीक काम करें और वे दुर्बल न हों। अच्छा स्वास्थ्य अच्छे भोजन पर निर्भर है। शरीर का स्वस्थ होना तथा मन शुद्ध होना दोनों ही बातें अच्छा और शुद्ध भोजन करने पर निर्भर हैं। कहा भी है "जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन।" संसार में सब जीवों के लिए उनके शरीर की बनावट के अनुसार अलग-अलग भोजन बना है। हमारे देश में मनुष्य के लिए अन्न, दूध, फल और शाक हैं। यह वस्तुएं हमारी जलवायु, हमारे स्वभाव व शरीर की रचना के अनुसार सबसे अच्छे समझे जाते हैं। इनसे न केवल हमारे शरीर के अंग प्रत्यंग सब तरह से बलशाली होते हैं बल्कि हमारो बुद्धि भी तेज होती है और मन भी साफ होता है।

नहा-धोकर, हाथ-पैर साफ करके, ऐसे वातावरण में भोजन करना चाहिए जहां शान्ति हो और प्रेम से परिवार व मित्रों के साथ भोजन किया जा सके। प्रेम से खाया रुखा सूखा भोजन भो स्वादिष्ट लगता है। विदुर का प्रेम से खिलाया हुआ साग भी श्री कृष्ण ने कितना स्वाद लेकर खाया था। भोजन करने में कभी जल्दी नहीं करना चाहिए। अच्छी तरह चबा-चबा कर भोजन करना चाहिए। भोजन करने के बाद तुरंत काम में नहीं लगना चाहिए इससे भोजन अच्छी तरह नहीं पचता। और भोजन करके तुरंत सो जाना तो बहुत ही हानिकारक है। इसलिए सोने के समय से कई घंटे पहले भोजन कर लेना चाहिए।

बहुत गरम चीजें खाने या पीने से या बहुत ठंडी चीजें खाने या पीने से पेट खराब होता है और दांत भी जल्दी गिर जाते हैं। केवल स्वाद के लिए या फैशन में पड़ कर मसालेदार चाट-पकौड़ी, चाय-काफी, लेमन-सोडा, आइसक्रीम, इत्यादि चीजें खाने से स्वास्थ्य खराब होता है। खास तौर पर ये चीजें बाजार में बनी हुई तो और भी खराब हैं क्योंकि न तो बाजार वाले उस में अच्छो चीजें डालते हैं और न उसको सफाई से बनाते हैं।

भोजन वास्तव में तीन तरह का होता है। सात्विक यानि वह जिसको खाने से शरीर स्वस्थ होता है, बुरे विचार मन में नहीं उठते, चित्त को शान्ति मिलती है और बुद्धि बढ़ती है, जैसे दूध, फल, मेवा, शाक, अनाज, इत्यादि।

दूसरे प्रकार का भोजन होता है राजसी। इसको खाने से सुस्ती बढ़ती है, पाचन शक्ति बिगड़ती है और बुद्धि भी कमजोर हो जाती है। राजसी भोजन लोग स्वाद के लिए खाते हैं उनको जीभ के स्वाद के पीछे यह ध्यान नहीं रहता कि ऐसा भोजन उनके शरीर में क्या गुण या अवगुण पैदा कर सकता है। खूब मसालेदार चाट पकौड़ी, कुल्फी मलाई, तली हुई चटपटी चीजें यह सब राजसी भोजन में गिनी जाती हैं। इसमें पैसा भी अधिक खर्च होता है और गुण भी कम होता है।

तीसरा, और सबसे घटिया किस्म का भोजन होता है तामसिक जिसको खाने से मन में उत्तेजना पैदा होती है, बुरी भावनाएं पैदा होती हैं और आदमी का स्वभाव पशुओं जैसा बन जाता है। शराब, मांस, शहद, गूलर, इत्यादि तामसिक भोजन है। ऐसा भोजन मन और बुद्धि दोनों को हानि पहुँचाने वाला होता है।

सात्विक भोजन सबसे अच्छा भोजन है। ऐसे भोजन से आदमी में सादगी, दया, शान्ति, बुद्धि बढ़ती है और शरीर पुष्ट होने के साथ चेतन बनता है।

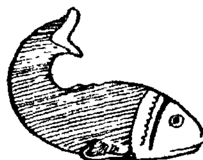
मांस मनुष्य का भोजन नहीं है। जिन पशुओं का भोजन मांस है वे जन्म से ही बच्चों को मांस से पालते हैं तथा उनकी शरीर रचना, दांत, मेदा आदि उसी तरह के होते हैं। मनुष्य के दांत, पंजा, नाखून, नसें, हाजमा और शरीर मांस खाने वाले जानवरों की तरह के नहीं होते। रायल कमीशन ने एक रिपोर्ट में लिखा है कि मांस खाने के लिए मारे गए पशुओं के शरीर में तपेदिक जैसे भयानक रोगों के कीटाणु होते हैं। उनका मांस खाने वाले आदमियों को भी वही बीमारियां लग जाती हैं। विज्ञान के अनुसार मांस को हज़म करने के लिए मामूली भोजन के मुकाबले चार गुनी शक्ति चाहिए। महात्मा गांधी ने कहा था कि मांस खाना अनेक भयानक बीमारियों की जड़ है।

लोगों का जो यह ख्याल है कि मांस खाने से ताकत बढ़ती है, यह गलत है। क्या हाथी, घोड़ा जैसे बलशाली पशु मांस खाते हैं? इसी तरह यह समझना भी गलत है कि मांस खाने वाले सैनिक अधिक वीरता से युद्ध कर सकते हैं। प्रो० राम मूर्ति, महाराणाप्रताप

भीष्म पितामह, अर्जुन, आदि प्रतापी योद्धा भी मांसाहार नहीं करते थे।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० जोजिया आल्डफील्ड ने भी कहा है कि यह विद्वानों ने खोज करके सिद्ध कर दिया है कि वनस्पति जाति के भोजन में वे सब गुण मौजूद हैं जो मनुष्य के शरीर, मन व बुद्धि तीनों का बढ़िया से बढ़िया विकास कर सकते हैं। मेवा, अनाज, दूध, फल आदि में जबकि औसतन ८० से ८५ प्रतिशत शक्तिवर्धक अंश होता है, मांस, मछली और अंडे में २८ से ३० प्रतिशत से अधिक नहीं होता।

शाकाहार के विरुद्ध एक भी प्रमाण नहीं मिलता। तभी तो जार्ज बर्नार्डशा ने कहा है कि मांस खाना अपने पेट को कब्रिस्तान बनाने के बराबर है। अब तो यूरोप में भी अधिक लोग शाकाहार करने लगे हैं।



एकांकी

भामाशाह

स्थान—मेवाड़ की सीमा

[चित्तौड़ की ओर प्यार और दुःख के साथ देखते हुए, अरावली की पहाड़ी पर महाराणा प्रताप, रानी पद्मावती, उनके बच्चे और सैनिक]

महाराणा प्रताप—(मातृभूमि को शीश झुकाकर) बप्पारावल और संग्राम सिंह की वीर भूमि, तेरा यह पुत्र तुझे शत्रुओं की दासता से न बचा सका। इसलिए विवश होकर विदा लेता हूं। मुझे आशीर्वाद दे कि फिर तुझे स्वतन्त्र करवा के मैं फिर तेरी पुण्य भूमि में लौटकर आऊँ। (साथी सैनिकों से) मेरे दुःख के साथियों मैं कायर ही हूं जो मजबूर होकर अपनी जन्मभूमि को दासता में छोड़ कर जा रहा हूँ।

एक सैनिक—मेवाड़ को आप पर गर्व है। आप ऐसी बात क्यों कहते हैं ? आपने देश की रक्षा के लिए क्या नहीं किया ? सभी कुछ तो आहुति कर

दिया। आपके समान देशभक्त कहाँ मिलेगा ? जब भाग्य ही बुरा हो तो दुःख करना बेकार है।

महाराणा प्रताप—वीर सैनिक ! अब मैं अपनी मातृभूमि पर यवनों का और अत्याचार नहीं देख सकता। इसलिए अब यहाँ से चले जाने के सिवा चारा भी क्या है ? चलो देर करना खतरे से खाली नहीं है।

[महाराणा प्रताप और उनके साथियों ने चलने के लिए कदम उठाया ही था कि दूर से आते हुए भामाशाह दिखाई दिए]

भामाशाह—(नेपथ्य से) हे मेवाड़ मुकुट। तनिक ठहरिए और मेरी एक प्रार्थना सुनने की कृपा कीजिए।

महाराणा प्रताप—(रुक कर) अरे ये तो स्वयं भामाशाह आ रहे हैं ! जरा ठहरें। देखें वह क्या संदेश लाए हैं। (सभी साथी रुक जाते हैं)

(महाराणा प्रताप के चरणों में प्रणाम करते हैं और महाराणा प्रताप उनको उठा कर गले से लगा लेते हैं)

महाराणा प्रताप—मंत्रीवर आप इतने व्याकुल क्यों हैं ? आपकी आँखों में आँसू क्यों ?

भामाशाह—मेवाड़ के भाग्य विधाता। धन न होने से आप सेना नहीं इकट्ठी कर पा रहे हैं और इसी लिए आपको जन्मभूमि छोड़ कर जाना पड़ रहा है क्या यह हमारे लिए कम शर्म की बात है ?

महाराणा प्रताप—किन्तु भामाशाह इसमें आपका क्या दोष है ? यह सब भाग्य का ही तो खेल है। मुझे तो यह सन्तोष है कि मेरे प्रिय साथियों ने तन, मन और धन से जो भी सम्भव था मेरी सहायता की।

भामाशाह—नहीं राजपूत शिरोमणि। मैं आपकी कुछ भी सेवा नहीं कर सका। आपका ही नमक खा कर मेरा यह शरीर बना है और आपकी ही कृपा से धन संचय करके मैं सेठ बना बैठा हूँ। आज मेवाड़ का सूर्य दर-दर की ठोकरें खाए और मैं धनीमानी बना बैठा ऐश करूँ—धिक्कार है मेरे ऐसे जीवन पर।

महाराणा प्रताप—ऐसा न कहो भामाशाह, तुमने भरसक देश की सेवा की है। परन्तु भाग्य में जो लिखा है उसे नहीं मिटाया जा सकता।

भामाशाह—(दृढ़ स्वर में) मिटाया जा सकता है।

प्रयत्न करने पर क्या नहीं हो सकता ? इसलिए इस कठिन समय में मेरी एक प्रार्थना सुनें।

महाराणा प्रताप—एक नहीं अनेक, भामाशाह आप कहिए क्या कहना चाहते हैं ?

भामाशाह—तो कृपया रेगिस्तान की तरफ मुंह किए खड़े हुए इन घोड़ों का मुंह मेवाड़ की पुण्यभूमि की तरफ मोड़ दीजिए। मेरे खजाने में आपकी ही कृपा से कमाया हुआ काफी धन है। उसके सदुपयोग का इससे अच्छा अवसर कब आएगा। वह सब का सब आपके चरणों में अर्पित है। इस धन से सेना एकत्रित करके हम बारह वर्ष तक लड़ सकते हैं और दुश्मन के दांत खट्टे कर सकते हैं। आप मेरी तुच्छ भेंट स्वीकार कीजिए और मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपके पराक्रम से फिर एक बार मेवाड़ पर केसरिया झण्डा फहराएगा।

महाराणा प्रताप—(आश्चर्य से) भामाशाह, आपका यह सम्पूर्ण त्याग मुझे चकित कर रहा है। परन्तु आपकी निजी सम्पत्ति पर मेरा क्या अधिकार है ?

भामाशाह—प्रभो, ऐसा न कहिए। मेवाड़ मेरी जन्म-भूमि है। यह सम्पत्ति सारे देश की सम्पत्ति है। मैंने तो केवल धरोहर समझ कर इसकी रक्षा की

है। यह सारे देश की रक्षा के काम आए इससे ज्यादा मेरे लिए और क्या सौभाग्य होगा ?

महाराणा प्रताप—दानवीर भामाशाह आप धन्य है। जिस धन के पीछे कैकेयी ने राम को चौदह वर्ष बनों में भटकाया, जिस धन के लिए बनवीर ने अबोध राजा उदयसिंह का घात करने का असफल प्रयत्न किया और जिस धन के पीछे आदमी क्या-क्या नहीं करता उसी धन को आप तिनके की तरह त्याग रहे हैं। आपकी उदारता धन्य है। आप महान् हैं। आपके इस एहसान को देशवासी कभी न भूलेंगे। इतिहास में आपका नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जाएगा।

भामाशाह—(विनय से) इस साधारण कर्त्तव्य पालन की इतनी तारीफ न कीजिए राजन्। यह धन इस भले काम में लगे इससे अधिक प्रसन्नता और संतोष की बात मेरे लिए लिए और क्या हो सकती है ?

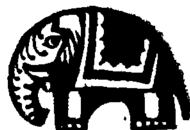
महाराणा प्रताप—भामाशाह, आज आपने मुझे नया जीवन दिया है। मैं अब मेवाड़ के उद्धार के लिए दुगने उत्साह से दृढ़ प्रतिज्ञ हूँ।

(सैनिकों से) वीर सहचरों। भामाशाह की इस

बड़ी सहायता ने हमारी कठिनाइयां दूर कर दी हैं। आओ फिर एक बार युद्ध की तैयारी करें और अपनी विजय यात्रा के लिए सर्वस्व अर्पण करने के लिए कमर कसें।

सब—महाराणा प्रताप की जय। मेवाड़ मेदिनी की जय। दानवीर भामाशाह की जय।

(पटाक्षेप)



जीव और उस के भेद

संसार में दो द्रव्य मुख्य हैं : जीव और अजीव ! जीव उसे कहते हैं जिस में ज्ञान होतो है यानि जानने या देखने की शक्ति होती है। दूसरे शब्दों में जीव उसे कह सकते हैं जिस में आत्मा होती है और अजीव उसे जिस में नहीं होती। अजीव में इसी लिए जानने या देखने की शक्ति नहीं होती।

जीव पांच प्रकार के होते हैं :

(१) जिन के केवल एक इन्द्री होती है यानि जो केवल स्पर्षण अर्थात् छूने को महसूस कर सकते हैं। इन के केवल सांस लेने की शक्ति होती है। यह भोजन अपनी खाल से चूस कर पलते हैं। उदाहरण के लिए पेड़-पौधे, वे जीव जिन से मिल कर पृथ्वी बनती है, वे जीव जिन से मिल कर जल बनता है, वे जीव जिन से मिल कर अग्नि बनती है और वे जीव जिन से मिल कर

वायु बनती है। ऐसे एकेन्द्रिय जीवों को स्थावर जीव भी कहते हैं।

(२) द्विइन्द्री जीव अर्थात् जिन के स्पर्षण (छूने) और रसना अर्थात् जीभ भी होती है। ऐसे जीव मुंह से भोजन खाते या पीते हैं। जैसे लट, केंचुआ, शंख, जोंक इत्यादि।

(३) तीन-इन्द्री जीवों के स्पर्षण, रसना (जीभ) और नाक अर्थात् सूंघने की शक्ति भी होती है। इन जीवों में चींटी, खटमल, जूं इत्यादि की गिनती होती है।

(४) चार-इन्द्री जीवों में स्पर्षण, रसना, घ्राण (सूंघने की शक्ति) के अतिरिक्त आंखें अर्थात् देखने की शक्ति भी होती है जैसे ततैंया, मच्छर, मक्खी, टिड्डी इत्यादि।

(५) पांच-इन्द्री (पंचेन्द्रिय) जीवों के स्पर्षण, रसना, घ्राण, नयन और कर्ण (कान यानि सुनने की शक्ति) सभी होती हैं। अर्थात् पंचेन्द्रिय जीव सब तरह से पूरा जीव होता है। देवी-देवता, पुरुष-नारी, बैल-घोड़ा आदि जानवर ये सब पंचेन्द्रिय जीव हैं।

यह पांचों प्रकार के जीव कर्मानुसार देह त्याग

कर नई-नई देह धारण करते रहते हैं जैसे चींटी मर कर बैल बन जाती है, बैल मर कर मनुष्य की देह में आ जाता है, मनुष्य मर कर देव बन जाता है, इत्यादि इत्यादि। इसी चक्र को संसार में आवागमन कहा गया है। अनन्त काल तक जीव इसी तरह भांति-भांति की पर्य्यायों में घूम-घूम कर सुख दुख भोगता रहता है। जो महान् आत्मा अपने आप को शुद्ध कर कर्मों का नाश कर देती है और जो आत्मा का स्वभाव है यानि ज्ञान केवल उसी का स्वरूप रह जाती है वह केवल ज्ञानी हो कर संसार के आवागमन से छूट जाती है। उसी आत्मा को हम कहते हैं कि उस का मोक्ष हो गया और वह परमात्मा हो गई।



चार कषाय

बोलचाल की भाषा में कषाय
शब्द का अर्थ है चेप वाली वस्तु जैसे
पेड़ का गोंद । जो वस्तु किसी एक वस्तु को
दूसरे में चिपकाने का काम करे उसे कषाय कहते
हैं। पिछले वर्ष के पाठ में बालकों ने पढ़ा था कि
आत्मा का स्वभाव ज्ञान है। परन्तु उस पर कर्म-
रूपी मैल चिपका रहता है इस लिए उस
का शुद्ध ज्ञान नहीं निखरता और
इसी लिए उसे संसार में
आवागमन के बंधन में फसना पड़ता है। इन कर्मों को आत्मा से चिपकाने में जो चीज सहायक होती है उसे ही कषाय कहा जाता है।

एक सूखे वस्त्र पर यदि मिट्टी गिर जाय तो वह अपने आप झड़ जातो है उस से चिपकती नहीं। परन्तु यदि उस वस्त्र में कोई चिपकनी चीज या चिकनाई लगी हो तो धूल उस से लग कर चिपक जाएगी और कपड़ा मैला हो जाएगा। इसी तरह बिना कषाय के

जो हम काम करते हैं उस से कर्म आत्मा में नहीं चिपकता । संसार के सभी प्राणी चौबीस घंटे कुछ न कुछ तो करते ही रहते हैं । जो स्वाभाविक काम हैं उन से जो कर्म बनते हैं वह अपने आप ही जल्दी छूट जाते हैं, आत्मा में चिपकते नहीं ।

आत्मा से कर्मों को चिपकाने वाले कषाय चार प्रकार के होते हैं :

(१) क्रोध—शिक्षक या माता पिता जब बच्चे को उस को गलती ठीक करने के लिए डांटती हैं तब उस में क्रोध कषाय नहीं होती । परन्तु यदि तुम क्रोध में आ कर किसी से लड़ पड़ो, गाली गलौच करो, या मार पीट करो तो उस से कितना कष्ट तो उस को होगा जिस से तुम लड़ोगे और तुम को भी कितनी अशान्ति होगी । गुस्से में खून जलने लगता है, शरीर कांपने लगता है और घटना होने के बाद भी आदमी उसी बात को सोच-सोच कर जलता-भुनता रहता है । क्रोध से शरीर भी कमजोर होता है और मन भी खराब होता है । ऐसी अवस्था में किया गया कर्म आत्मा

को कमजोर पा कर गोंद की तरह उस से चिपक कर बैठ जाता है।

(२) इसी तरह आत्मा को अशुद्ध बनाने में दूसरा कषाय मान है जिस से मन में अभिमान पैदा होता है। मनुष्य घमण्डी बन कर अपने आप को ऊंचा और दूसरों को नीचा समझने लगता है। मित्र भी ऐसे आदमी के शत्रु बन जाते हैं। ऐसे आदमी का समाज में भी कोई आदर नहीं होता। इस लिए मान कषाय त्याग कर मनुष्य को विनयशील बनना चाहिए।

(३) तीसरा कषाय है माया यानि छल-कपट। मायाचारी मनुष्य सदा दूसरे को धोखा दे कर, झूठ बोल कर, झांसा दे कर अपना उल्लू सीधा करने के चक्कर में रहता है। उस से सदा दूसरों को दुख और नुकसान ही पहुंचता है किसी का भला नहीं होता। उस का कोई विश्वास नहीं करता और जब उस का छल-कपट दूसरे लोग जान जाते हैं तो उस का बड़ा अनादर होता है, लोग उस के शत्रु बन जाते हैं। इस लिए

मायाचारी छोड़ कर मनुष्य को सरल-स्वाभाव रखना चाहिए।

(४) लोभ—जो चौथा कषाय है, उस को तो पाप का बाप ही बताया गया है। लोभी आदमी तो अपने फायदे के लिए झूठ भी बोलता है, छल-कपट भी करता है, दूसरे की हत्या भी कर डालता है, चोरी करता है, ठगी करता है। परन्तु उस को कितना भी धन क्यों न मिल जाए उस का लोभ नहीं छूटता और वह और भी अधिक धन एकत्रित करने के लिए गंदे से गंदा काम करने के लिए सदा तैयार रहता है। उस के धन की भूख कभी मिटती ही नहीं। इस लिए लोभी न बन कर मनुष्य को संतोषी बनना चाहिए।

अपनी आत्मा को शुद्ध रखने के लिए, दुःख और अशान्ति से बचने के लिए और समाज में आदर पाने के लिए इन चार कषायों से जहां तक सम्भव हो सके बचने की कोशिश करनी चाहिए।

वीर शिरोमणि चामुण्डराय

लगभग एक हजार वर्ष पुरानी बात है। भारत के दक्षिण में जहाँ आज मैसूर राज्य है वहाँ मारासिंह द्वितीय का राज्य था। उनके वीर सेनापति चामुण्डराय बड़े वीर और ज्ञानी पुरुष थे।

वीर चामुण्डराय की वीरता से कई पास पड़ौसी राक्षस राजाओं की हार हुई और राजा मारासिंह की कीर्त्ति दूर-दूर तक फैली।

चामुण्डराय यद्यपि ब्राह्मण कुल में पैदा हुए थे, उनकी माता जैन धर्म में श्रद्धा रखती थीं। उन्हीं के पुण्य प्रभाव से चामुण्डराय भी अहिंसादि धर्मों के पक्के पक्षपाती थे। जहाँ एक तरफ उन्होंने आचार्य आर्यसेन के पास अस्त्र-शस्त्र विद्या प्राप्त की, वहीं दूसरी ओर उनको आचार्य अजितसेन स्वामी से उच्च कोटि की धर्म शिक्षा का भी लाभ हुआ। इस तरह सेनापति चामुण्डराय कर्मवीर और धर्मवीर दोनों ही गुणों में पूर्ण थे।

यद्यपि चामुण्डराय को अहिंसा में पक्का विश्वास था परन्तु सेनापति होते हुए उन्हों ने देश की रक्षा व जनता के हित के लिए बड़ी-बड़ी लड़ाइयां लड़ीं और विजय पाई। उन्हें विश्वास था कि अहिंसा कभी किसी को कायर नहीं बनाती बल्कि जो बहादुर होते हैं वही असली कर्मवीर बन पाते हैं और अहिंसा का ठीक-ठीक पालन कर सकते हैं। अभी थोड़े ही दिन की बात है कि इसी विश्वास को लेकर बापू ने स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ी और देश को अंग्रेजों को दासता से छुड़ाया। वर्त्तमान काल के ये महापुरुष जिनके बराबर अहिंसा में पूरा विश्वास रखने वाला इस जमाने में कोई नहीं हुआ, क्या कायर थे? हमारी सरकार अहिंसा में विश्वास रखती है परन्तु हमारे वीर सैनिक जो देश की रक्षा के लिए भयंकर युद्ध लड़कर अपने जान की बाजी लगा देते हैं, क्या कायर हैं? इसलिए जो लोग यह कहते हैं कि अहिंसा मनुष्य को कायर बना देती है, वे भारी भूल करते हैं।

चामुण्डराय ने कितने ही युद्ध जीत कर 'समर धुरंधर', 'वीर मार्त्तण्ड', 'समर परशुराम', 'सुभट चूढ़ामणि', इत्यादि अनेक उपाधियां पाईं। आज भी भारत के वीर सिपाही जब युद्ध में बड़ी बहादुरी के काम

करते हैं तो उनको 'परमवीर चक्र', 'महावीर चक्र' इत्यादि उपाधियों से सुशोभित किया जाता है।

चामुण्डराय के मार्ग दर्शन में केवल शूरवीरता ही नहीं बढ़ी बल्कि उनके काल में मैसूर राज्य में शिल्पकला, साहित्य, भवन निर्माण, व्यापार, खेती, सभी दिशाओं में खूब उन्नति हुई। कन्नड़ भाषा में बहुमूल्य ग्रन्थों व काव्यों की महान रचना हुई क्योंकि साहित्यकारों, कलाकारों, कवियों, इत्यादि का बड़ा मान था और राज्य की ओर से उनको उचित पुरस्कार मिलता था।

अपने गुरू की आज्ञा से चामुण्डराय ने बाहुबलि की एक ५७ फुट ऊँची विशाल प्रतिमा का निर्माण कराया जो सुन्दरता व कला की दृष्टि से अपने किस्म की संसार भर में अद्वितीय प्रतिमा है। मैसूर राज्य में स्थित श्रवणबेलगोल नामक गांव में बाहुबलि की यह प्रतिमा एक पहाड़ी पर स्थित है और उसकी सुन्दरता को देखने के लिए संसार भर के यात्री श्रवणबेलगोल की यात्रा कर अपने को धन्य मानते हैं। बाहुबलि की यह प्रतिमा गोमटेश्वर के नाम से भी प्रसिद्ध है।

प्यारे बालको, वीर सेनापति चामुण्डराय के समान तुम भी वीर, साहसी, परोपकारी, गुणग्राही बन कर अपनी प्यारी मातृभूमि का मुख उज्जवल करो।

नशीली वस्तुओं का निषेध

मनुष्य जाति स्वभाव से नीति, विनय आदि अच्छी आदतों वाला जीव है। परन्तु उन लोगों को जिन्हें किसी नशीली चीज के सेवन की बुरी लत पड़ जाती है, वे अपने अच्छे स्वभाव को खो देते हैं। उन्हें क्या खाना चाहिए, क्या नहीं खाना चाहिए, क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए इसका बिल्कुल ही ज्ञान नहीं रहता। भांग, धतूरा, शराब, चरस, गांजा, तम्बाकू, अफ़ीम आदि नशीली चीजें बुद्धि को और शरीर को दोनों को ही नष्ट-भ्रष्ट करने वाले होते हैं। इनके चक्कर में पड़ कर मनुष्य जुआ, मांस भक्षण, चोरी, वेश्या सेवन, हत्या जैसे सभी भयंकर कुकर्म करने लगता है। अच्छे बुरे का तो उसे बिल्कुल ज्ञान ही नहीं रहता।

कुछ लोग बहका कर कभी सोसायटी और फैशन के नाम पर या धर्म के नाम पर भोले भाले बालकों को या युवकों को नशा करना सिखाने की कोशिश करते हैं। कहते हैं कि जिसने सिगरेट या शराब नहीं

पी वह पोंगापंथी है और आजकल की सोसायटी में नहीं चल सकता। यह कोरा भुलावा है। जो लोग विदेशों की यात्रा करते हैं उन्होंने बार-बार हमें बताया है कि ऐसे देशों में भी जहां सिगरेट का आम रिवाज है, मांस भक्षण रोज किया जाता है, और शराब पानी की तरह पी जाती है, वहां भी उस भारतीय का अधिक सन्मान होता है जो इन चीजों को छूता तक नहीं।

दूसरी ओर कुछ लोग धर्म के नाम पर नशीली चीजें खिलाने या पिलाने की कोशिश करते हैं। कहते हैं भगवान शंकर भी तो भंग, चरस, गांजा, धतूरा पीते खाते थे, तुम भी खाओ तो भगवान शंकर प्रसन्न होंगे। यह सब उनकी मनगढंत बातें हैं। वह भोले युवकों को कुमार्ग पर डाल कर अपना उल्लू सीधा करने की कोशिश में रहते हैं। भला सोचो तो भंगेड़ी भंग के नशे में कैसा पागल होकर फिरता है, गंदी बातें बकता है, गंदे काम करता है, नालियों में पड़ा रहता है क्या कभी भगवान शंकर ऐसे कर्म कर सकते हैं। वे तो बड़े दयालु, सहृदय, वीर, और बुद्धिमान कहलाते हैं उनका तो नाम ही "शिव" है जिसका अर्थ है "अच्छा"। नशे में पड़ कर कभी कोई आदमी अच्छा बन ही नहीं सकता।

भुलावे में डालने वाले इन दोनो प्रकार के दुष्ट लोगों से दूर रहना चाहिए। वरना नशे में पड़ कर बुद्धि ही नहीं शरोर का भी सत्यानाश हो जाएगा। शराब से तपेदिक, तम्बाकू से कैंसर जैसे भयानक रोग लग जाते हैं जिनसे मनुष्य घोर दुःख पाता है और सड़ गल कर बड़ी वेदना से शरीर छूट पाता है।

इसके अतिरिक्त नशीली चीजों में कितना अनावश्यक धन नष्ट होता है। करोड़ों एकड़ भूमि जिसमें तम्बाकू जैसी चीजें बोई जाती हैं, यदि अनाज बोने के काम में आए तो कितने भूखे लोगों के लिए अन्न पैदा हो ? आज शराब, सिगरेट, बीड़ी, भंग आदि में जो अरबों रुपया खर्च होता है उसको देश के सुधार में लगाया जाए तो देश का बड़ा लाभ हो।

बहुत से घरों में जिन लोगों को नशीली चीजों को लत पड़ जाती है, वे सारी कमाई उसी में फूंक देते हैं और उनके बच्चे और घर वाले अन्न और कपड़े जैसी आवश्यक चीजों को भी तरसते रहते हैं। अतएव यदि अच्छे नागरिक बनना चाहते हो तो नशीली चीजों से दूर रहो और उन लोगों से भी बचो जो ऐसी खतरनाक चीजों का सेवन करते हैं। याद रखो कि बुरी लत एक बार लग जाए तो फिर छूटती नहीं।

मानव जीवन का उद्देश्य

अक्सर जीवन में बच्चों से यह प्रश्न पूछा जाता है बड़े हो कर तुम क्या बनोगे? कोई कहता है कि मैं पढ़ लिख कर डॉक्टर बनूंगा, कोई कहता है इंजीनियर बनूंगा, कोई कहता है मैं प्रोफेसर बनूंगा, तो कोई कहता है कि मैं तो लीडर ही बनूंगा। इन सब बातों में रुपया कमा कर समाज में अपना स्थान बनाने की भावना होती है। लगता है कि जैसे ज्यादा से ज्यादा रुपया एकत्रित कैसे किया जाए यही सारे संसार का एकमात्र उद्देश्य बन गया है।

हमारे देश में, जो महावीर, बुद्ध, गांधी जैसे तपस्वियों की या भीष्म पितामह, श्री कृष्ण, रामचन्द्र और ध्रुव जैसे कर्मवीरों की पुण्य जन्म-भूमि है, यह कोई नहीं कहता कि बड़ा हो कर मैं कोई ऐसा काम करना चाहता हूं जिस के द्वारा समाज-सेवा, देश-सेवा या आत्म-कल्याण कर के सुख-शान्ति स्थापित हो।

वास्तव में यही जीवन का परम उद्देश्य होना चाहिए।

डाक्टर अवश्य बनो परन्तु मात्र इस भावना से नहीं कि मोटी-मोटी फीस ले कर ढेर सा रुपया पैदा कर के ही बड़े आदमी बन जाओगे बल्कि इस लिए कि डाक्टरी सीख कर उन लोगों की सेवा कर सकोगे जो रोग से पीड़ित होकर घोर कष्ट पा रहे हैं चाहे वे अमीर हों या गरीब, पुलीस के अफसर बनना चाहो तो यह भावना लेकर कि अपने नगर को चोरों, ठगों, हत्यारों और बदमाशों से मुक्त करके अमनचैन कायम कर सको, प्रोफेसर बनो तो इस भावना से कि आने वाली पीढ़ी के युवकों को सच्ची शिक्षा देकर उन्हें अच्छे नागरिक बना सको।

याद रक्खो कि केवल अधिक धन संचय कर लेने से ही न तो देश का कल्याण हो सकता है और न तुम्हें ही संतोष हो सकता है। यदि ऐसा होता तो जिनके पास रुपया है वे सुख संतोष से रहते। परन्तु ऐसा दिखाई नहीं देता। उनकी रुपए की भूख कभी मिटती नहीं है और सारा जीवन इस भूख का पेट भरने में व्यतीत हो जाता है। संसार में रह कर पैसा कमाना भी आवश्यक है जिससे तुम अपनी आवश्यकताएं

स्वयं पूरी कर सको और किसी पर आश्रित न रहो परन्तु पैसा कमाना मात्र कभी मानव जीवन का उद्देश्य नहीं हो सकता। यह तो केवल अपने शरीर की रक्षा करके और अच्छे काम करने का एक साधन मात्र है।

अपना पेट तो जानवर, पक्षी, कीड़े, मकौड़े भी किसी तरह पाल कर जीवन भर जी लेते हैं। क्या केवल पेट पालने की भावना ही मन में लेकर हम भी जानवरों की तरह ही जीवन भर बिता देना चाहते हैं? मानव जीवन मिला है तो अच्छे-अच्छे काम करने की ऊँची भावना मन में रक्खो और यह अच्छी तरह समझ लो कि शुद्ध जीवन व्यतीत करके अपना तथा और जीवों का कल्याण कर पाओगे तभी तुम्हारा यह मानव जीवन सफल होगा। तभी तुम महावीर, गांधी, जवाहर, जैसे महान व्यक्ति बन कर अमर कीर्त्ति के भागी बन सकोगे।



अनुशासन

अनुशासन, विनय या आज्ञाकारिता यह तीनों लगभग एक ही बात है। जहां अनुशासन होता है वहां सब काम ठीक और अच्छे ढंग से होता है और जहां अनुशासन नहीं होता वहां हर काम में गड़बड़ होती है, दुगुना-तिगुना समय लगता है और काम फिर भी ठीक ढंग से नहीं हो पाता।

हमारी सेना के सैनिक अनुशासन का एक बड़ा अच्छा उदाहरण हैं। वे कैसे एक से एक कदम मिला कर हर कार्य को अपनी अपनी जगह स्थिर रहकर कितने सुचारू रूप से करते हैं। जैसे किसी मशीन के कलपुरजे किस खूबी से काम पूरा करते हैं। यदि वे सब कल पुरजे अपनी मनमानी करने लगें तो विचार करो उस मशीन का क्या हाल हो जाएगा।

नियम के अनुसार काम करना ही अनुशासन कहलाता है। सड़क पर चलने का नियम है कि बाएं से चलो। यदि हर मोटर, गाड़ी, तांगा, इत्यादि अपने मन से सड़क पर चाहे जहां चलने लगें तो क्या हो?

सब एक दूसरे से भिड़ पड़ें, दुर्घटनाएं हों और किसी के भी लिए सड़क पर चलना असम्भव हो जाए। बच्चे नियम से कक्षा में बैठते हैं। शिक्षक की आज्ञा से जिसे कहा जाता है वही बालक बोलता है। परन्तु यदि सभी बालक अपनी अपनी गाने लगें, तो स्कूल एक कबाड़ी बाज़ार बन कर रह जाए। न तो शिक्षक कुछ पढ़ा सके और न बच्चे कुछ सीख सकें।

ठीक समय पर काम करना भी अनुशासन का एक आवश्यक अंग हैं। जो बच्चा ठीक समय पर स्कूल नहीं आता उसको पूरा पाठ नहीं मिल पाता, जो ठीक समय पर अपना कार्य नहीं करता दूसरे बच्चों से पीछे रह जाता है। ठीक समय पर स्टेशन न पहुंचने वालों की गाड़ी छूट जाती है।

इसी तरह जो अनुशासन में चलने वाले बच्चे होते हैं वे अपने नम्बर पर काम करते हैं। दूसरों का नम्बर हड़प कर पहले अपना काम निकालने से अनुशासन भंग होता है। और इन्तजाम बिगड़ जाता है। लाइन या क्यू बना कर काम करने का नियम भी इसीलिए बनाया गया है। जो व्यक्ति पहले आया और लाइन में आगे खड़ा हुआ है उसका काम पहले होना चाहिए इससे लोगों में सन्तोष भी बना रहता है

और काम करने वाले को भी सुभीता रहता है, समय भी कम लगता है और आपस में मारपीट और हाथा-पाई की भी नौबत नहीं आती।

जो बच्चे बड़ों के आज्ञाकारी होते हैं, विनय के साथ उनके कहे अनुसार, उचित समय पर कार्य करते हैं, वे सबके प्रिय बन जाते हैं। उनका सब आदर करते हैं और उनके गुणों का भली प्रकार विकास होता है।

यूरोप और अमरीका के देश जो आज इतने आगे बढ़ गए हैं तो अनुशासन के कारण ही। रेल, बसों में, घर में, बाजार में, सिनेमा घरों में, खेल के मैदान में, सब जगह अच्छे अनुशासन के कारण ही वे अच्छे नागरिक बनते हैं। जैसे सोने के गहने में नगीने जड़ जाने से उसकी सुन्दरता चौगुनी बढ़ जाती है वैसे ही अनुशासन में रहने वाले बच्चों के गुणों का चौगुना विकास होता है।



सप्त कुव्यसन

व्यसन बुरी आदतों को कहते हैं। जिन आदतों से मनुष्य का भला होता है वे अच्छी आदतें हैं और जिन आदतों से मनुष्य गलत रास्ते पर चलकर अपना बुरा कर लेता है वे व्यसन या कुव्यसन कहलाते हैं। मुख्य व्यसन सात हैं जो हमेशा मनुष्य को पाप की ओर ले जाते हैं। इनका त्याग किए बिना मनुष्य सच्चा अहिंसा धर्म नहीं पालन कर सकता।

(१) **जुआ**--किसी भी तरह की हारजीत की शर्त लगाकर जो काम किया जाता है वह जुआ कहलाता है। पैसा लगाकर ताश खेलना, नक्की-मुट्ठे खेलना, कंचे खेलना, बद-बद कर पतंग उड़ाना, चौपड़ खेलना आदि सब जुए में शामिल है। जुआ खेलने का व्यसन जिसको पड़ जाता है वह चाहे कुछ भी हो जाए, चाहे बच्चे भूखे मर जाएं, उनको कपड़ा न नसीब हो,

उधार मांगना पड़े, यहां तक कि चोरी भी करनी पड़े, तो भी जुए के लिए कहीं न कहीं से पैसा जरूर लाता है। महाभारत में तुमने पढ़ा ही होगा कि जुआ खेलने के कारण पांडवों को कैसी दुर्दशा हुई थी। इस व्यसन के कारण धर्मराज युधिष्ठिर जैसे बुद्धिमान आदमी की भी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी।

(२) **मांसाहार**--मांस, मछली और अण्डे खाने वालों का स्वभाव भी उन्हीं जानवरों जैसा हो जाता है जिनका वह मांस खाते हैं। मांस भक्षण करने वाली जातियां ही दुनिया में सब से ज्यादा क्रूर होती हैं। ऐसे लोगों को हत्या, झूठ, चोरी आदि पाप करने में भी संकोच नहीं होता। मांस अप्राकृतिक भोजन है और इसके खाने से शरीर में अनेक रोग पैदा हो जाते हैं।

(३) **मद्य (शराब या और कोई नशा)**--अंगूर, महुए का रस, जौ का रस, इत्यादि बस्तुओं को बन्द कर के बहुत दिनों तक सड़ाया जाता है और जब उस में कीड़े पड़ जाते हैं तो उस को छान-छून कर शराब बनाई जाती है। इस के पीने वाला व्यक्ति मदमस्त हो जाता है, उस के मुंह से दुर्गन्ध आने लगती है और उस को अच्छे बुरे का ज्ञान नहीं रहता।

(४) **वेश्यागमन**—जो स्त्री केवल धन कमाने के लिए किसी भी पुरुष के साथ रमण करती है उसे वेश्या कहते हैं। ऐसी स्त्रियों के चक्कर में पड़ कर आदमी कंगाल हो जाता है, स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और शरीर में गंदी-गंदी बीमारियां लग जाती हैं।

(५) **शिकार**—मौज-शौक के लिए या मांस खाने के लिए बेचारे निरपराध भयभीत हिरन, पक्षी, आदि को मारना शिकार कहलाता है। संसार में जैसे आदमी को जीने का हक है वैसे ही पशु-पक्षी कोई भी मरना नहीं चाहता। उन को अकारण मारना निरी निर्दयता है।

(६) **चोरी**—रक्खी हुई, गिरी हुई या भूली हुई किसी भी दूसरे की चीज को बिना उस के स्वामी की आज्ञा के लेना चोरी कहलाता है। चोरी किया हुआ धन कभी रह नहीं सकता और चोर को कठोर राजदंड भोगना पड़ता है। चोर के मन में सदा दूसरे की चीज उड़ाने की धुन रहती है और जिसकी चीज चुराई जाती है उसको अत्यन्त दुःखित होना पड़ता है।

(७) **पर नारी सेवन**—यह भी वेश्या सेवन की भांति ही घृणित व्यसन है। विलासिता के वश दूसरे की स्त्री पर बुरी दृष्टि रखने वाला व्यक्ति व्यभिचारी

कहलाता है और उसका धर्म, धन और कीर्ति सब नष्ट हो जाते हैं। समाज में उसे घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। यदि भेद खुल जाए तो झगड़ा होकर मारपीट और हत्या तक की नौबत आ जाती है।

संसार में यह सातों ही व्यसन घृणित पाप समझे जाते हैं और यह परलोक भी बिगाड़ने वाले हैं। सदाचारी व्यक्ति को इन से सदा दूर रहना चाहिए।



पांच अणुव्रत

सदाचारी व्यक्ति न्याय से धन कमाता है, गुरुजनों का आदर करता है और मीठी वाणी बोलता है ऐसा व्यक्ति लज्जाशील होता है और सज्जनों की संगति में रहता है। ऐसे सदाचारो व्यक्ति सदा पांच व्रतों का पालन करते हैं। गृहस्थ के लिए ये पांच व्रत छोटे रूप में होते हैं इसलिए उनको अणु (छोटे) व्रत कहा जाता है और सन्यासी उनको बड़े रूप में पालन करते हैं इसलिए उनको महाव्रत कहा जाता है।

(१) **अहिंसाणुव्रत**—एकेन्द्रिय जीव की हिंसा गृहस्थ के लिए वर्जित नहीं है। परन्तु द्विन्द्रीय जीव या तोनोन्द्रोय, चौइन्द्रोय और पंचेन्द्रिय जीवों की हिंसा गृहस्थ को भी यथा सम्भव नहीं करनी चाहिए। इस हिंसा के भी अनेक भेद हैं जो आगे चल कर "अहिंसा" के विशेष पाठ में पढ़ाए जाएंगे। यहां केवल इतना ही समझ लेना पर्याप्त होगा कि जीव हिंसा से जहां तक संभव हो बचना चाहिए। हिंसा केवल जान से मार देने को ही नहीं कहते। किसी को बांध कर अकारण

पीड़ा पहुंचाना, निर्दयता से पीटना, शरीर के अंग काटना, इत्यादि भी हिंसा में गिने जाते हैं। परन्तु डॉक्टर जो चीराफाड़ी रोगी शरीर को अच्छा करने के इरादे से करते हैं वह हिंसा नहीं होती। अहिंसाणुव्रती को लाभवश मनुष्य पर शक्ति से अधिक बोझ भी नहीं लादना चाहिए और नहीं शक्ति से अधिक काम लेना चाहिए। किसी को भूख प्यास की पीड़ा पहुंचाना भी अहिंसाणुव्रती के लिए मना है। अप्रिय बचन बोलना भी (द्वेषवश) हिंसा में गिना जाता है।

(२) **अचौर्य व्रत**—इस व्रत के पालन करने वाले को बिना दी हुई वस्तु को उठाकर अपने काम में लाना या किसी को देना मना है। परन्तु जो चीजें सर्वसाधारण के उपयोग के लिए हैं जैसे जल, मिट्टी इत्याहि उनको बिना पूछे लिया जा सकता है। चोरी कराना, चोरी का माल खरीदना, नापतोल के बाटों को कमती-बढ़ती रखना, बिक्री की चीज़ में मिलावट करना, अकाल से लाभ उठा कर ज़्यादा मुनाफाख़ोरी करना, या घूस लेना ये सब बातें चोरी में गिनी जाती हैं।

(३) **ब्रह्मचर्याणुव्रत**—काम वासना एक प्रकार का रोग है अतएव अपनी पत्नी को छोड़ कर अन्य

अन्य स्त्री के साथ भोग की इच्छा करना सदाचारी के लिए वर्जित है।

(४) **सत्याणुव्रत**--जो वस्तु जैसी हो उसको वैसा न कहना असत्य कहलाता है। परन्तु जो बात सत्य होने पर भी दूसरे को दुःख पहुंचाने के लिए बोली जाती है वह भी असत्य ही है जैसे काने व्यक्ति को काना कह कर चिढ़ाना असत्य गिना जाएगा। इसके विपरीत यदि असत्य बोलकर किसी निर्दोष व्यक्ति के प्राणों की रक्षा होती हो या उसे अत्याचार से बचाना हो तो सत्याणुव्रती के लिए उस असत्य का भी निषेध नहीं होता। क्रोधवश या लालच में पड़ कर कभी झूठ नहीं बोलना चाहिए।

(५) **अपरिग्रह अणुव्रत**--रुपया, पैसा, जमीन, जायदाद, इत्यादि में आसक्ति रखने को परिग्रह कहते हैं। अणुव्रती को अपनी इच्छाएं सीमित रखने को ही अपरिग्रह अणुव्रत कहते हैं। इन चीजों की भूख की कोई सीमा नहीं होती इसलिए सदाचारी व्यक्ति संतोष का अभ्यास करता है और जितना आवश्यक हो उससे ज्यादा का त्याग करता है। इसी में सुख की प्राप्ति होती है। असंतोषी व्यक्ति को चाहे जितना भी मिल जाए वह और भी अधिक पाने की लालसा में सदा दुःखी बना रहता है।

बापू का बचपन

गांधी जी का जन्म पोरबन्दर में हुआ था। उन के पिता का नाम करमचन्द गांधी और माता नाम पुतली बाई था। गांधी जी के पिता तो धार्मिक थे ही, उन की माता भी बड़ी धर्मात्मा महिला थीं। वह व्रत, उपवास और देवदर्शन नियम पूर्वक करती थीं। बालक गांधी पर ऐसे सदाचारी और नेक माता-पिता के उदाहरणों का अच्छा प्रभाव पड़ा क्योंकि यदि माता-पिता का चरित्र अच्छा हो तो उनकी सन्तान पर भी अच्छे संस्कार पड़ते हैं।

एक दिन नगर में एक नाटक मण्डली आई और उसने सत्य हरिश्चन्द्र का नाटक खेला। गांधी जी इस नाटक को बार-बार देखने जाते थे। हरिश्चन्द्र के कष्टों को देख-देख कर वह कई बार रोए और सत्य पर मर मिटने का उन्हों ने पक्का निश्चय कर लिया। इस तरह बचपन में ऐसे सुन्दर संस्कार धीरे-धीरे

बनते चले गए। जैसे उपजाऊ धरती में बीज सहज ही पनप जाता है, इसी तरह संस्कारी बालक में सद्गुण झट जड़ पकड़ लेते हैं।

गांधी जी का एक दोस्त था जिस में कई बुरी आदतें थीं। उन के माता-पिता को उस लड़के का साथ बिल्कुल पसन्द नहीं था। पर भोले बालक गांधी जी उस की चालबाजी में ऐसे फंसे कि उसे ही अपना सच्चा दोस्त समझने लगे। इस मित्र ने गांधी जी को यह अच्छी तरह समझा दिया कि हम लोग इसी लिए कमजोर हैं कि हम मांस नहीं खाते और इसीलिए मुट्ठी भर अंग्रेज हम पर शासन करते हैं। वे मांस खाते हैं इसलिए बलवान हैं। और यह कि मांस खाने वाले निडर होते हैं। चूंकि गांधी जी स्वयं डरपोक थे और चोर, भूत व सांप के डर से अंधेरे में जाते डरते थे, वह उस मित्र की बातों में आगए। उन के मन में यह बात घर कर गई कि देश के सब लोग मांस खाने लगें तो देश जल्दी आजाद हो जाएगा।

गांधी जी जानते थे कि मांस खाना उन के माता पिता कभी सहन नहीं करेंगे। इसलिए उस मित्र के भुलावे में आकर एक भटियारे की दुकान में उन्हों ने मांस खाया। उन्हों ने लिखा है, "मांस चमड़े सा लग

रहा था। खाना असम्भव हो गया और मुझे कै आने लगी। मेरी वह रात बड़ी कठिनाई से कटी। सपने में ऐसा मालूम होता था मानो बकरा मेरे पेट में जिंदा है और 'में-में' करता है। मैं रात भर चौंक-चौंक कर उठता और पछताता रहा।"

इस तरह के भोज का चार-पांच बार ही प्रबन्ध हो सका। जब गांधी जी ऐसे भोज में सम्मिलित होते थे तो उनको घर खाना न खाने का कोई झूठा बहाना बनाना पड़ता था। इस प्रकार झूठ बोलने से उन की आत्मा को बहुत कष्ट होता था। मन कचोटता रहता। अन्त में गांधी जी ने अपने मित्र से साफ-साफ कह दिया कि मां-बाप से झूठ बोल कर वह मांस नहीं खा सकते। इस तरह उस दुष्ट मित्र से उन्हों ने अपनी जान छुड़ाई।

गांधी जी के पिता जी बड़े सत्संग प्रेमी थे। वे नित्य मन्दिर जाया करते थे। साथ में बच्चों को भी ले जाते थे। घर पर कई जैन साधु भी चर्चा करने आया करते थे। उन के कई मुसलमान और पारसी मित्र भी थे। ये लोग अपने-अपने धर्म की बातें गांधी जी के पिता जी को सुनाया करते थे। इस तरह

बचपन से ही गांधी जी के मन में सब धर्मों के प्रति सद्भावना जाग उठी थी।

जब गांधी जी विलायत पढ़ने गए तो बहुत से लोगों की तरह-तरह की भुलावे की बातों में पड़ कर उन्होंने कभी मांसाहार करना स्वीकार नहीं किया यद्यपि इस कारण भोजन के लिए उन्हें बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। बाद में गांधी जी शाकाहारियों की एक संस्था के सदस्य बन गए और उन्होंने अपने भोजन संबंधी प्रयोग आरम्भ कर दिए। उन्होंने घर से मंगाई मिठाई व मसाले खाना बन्द कर दिए और चाय और काफी भी छोड़ दी। कोको तथा उबली हुई सब्जी पर ही गुजर करने लगे। इन प्रयोगों से गांधी जी ने समझ लिया कि स्वाद का असली स्थान जीभ नहीं बल्कि मन है।

धर्म पर आस्था ने ही गांधी जी को लालच में पड़ने से बचाया और गलत राह पर जाने से रोका।



अहिंसा

जिस तरह हम
सुख से जीना चाहते हैं
और दुःख से बचना चाहते हैं
उसी तरह संसार के सभी छोटे-बड़े
जीव दुःख से बच कर सुख पूर्वक जीना
चाहते हैं। हम सभी एक दूसरे को किसी तरह का
कष्ट न दे कर सुख पहुंचाने का ही प्रयत्न
करें इसी पवित्र भावना का नाम
अहिंसा है। भगवान महावीर
के शब्दों में "जीओ
और जीने दो।"
हिंसा किसी को जान से मारने मात्र से ही
नहीं होती परन्तु हमारे जिस काम से
या बात से किसी दूसरे को दुःख
पहुंचे वह भी हिंसा ही
है। समझ लो
कि जिस बात से हमें दुःख होता है वह काम हम किसी
दूसरे के लिए कदापि न करें। जैसे हमें कोई गाली

दे, झूठ बोले, हमारी चीज चुरा ले, हमें ठग ले, या हमें मारे तो हमें दु:ख होता है। उसी तरह ऐसे काम हम किसी दूसरे के लिए करेंगे तो उस को दु:ख होगा इस लिए हमें ऐसे कामों से बचना चाहिए। अपने व दूसरों के सुख के लिए हमें सदा अच्छी बातें सोचनी चाहिएं, अच्छे बचन बोलने चाहिएं और अच्छे काम करने चाहिएं।

अहिंसा आत्मा का गुण है और यह शूर वीर पुरुष का आभूषण है। सब धर्मों में मुख्य होने के कारण ही "अहिंसा परमो धर्मः" कहा गया है।

संसार में रह कर हमारे द्वारा दूसरे जीवों की हत्या भी होनी अनिवार्य है इस लिए गृहस्थ हिंसा का पूर्ण त्याग नहीं कर सकता। घर के काम धन्धे, व्यापार, खेती आदि में छोटे जीवों की हत्या होती है। परन्तु जो आदमी यत्न कर के कम से कम हिंसा करता है और जिस के मन में हिंसा करने की भावना नहीं होती वह ऐसी हत्या होने पर भी हिंसा के पाप का भागी नहीं होता। गृहस्थ अपनी व दूसरों की रक्षा के लिए हथियार भी उठाते हैं, अन्यायियों को दण्ड देते हैं तब भी उन को हिंसा का पाप नही लगता।

स्थावर यानी एकेन्द्रिय जीवों की हिंसा से तो

गृहस्थ और संन्यासी कोई भी नहीं बच सकता। हम सांस लेते हैं, पानी पीते हैं, चलते-फिरते हैं, भोजन करते हैं तो ऐसे अनेक नन्हें कीटाणुओं की हत्या होती ही है। परन्तु त्रस यानी दो-इन्द्री से पंचेन्द्रिय जीवों तक की हिंसा के भी चार भेद हैं।

(१) संकल्पी हिंसा—इरादा कर के, दुष्ट भावना से या झूठा धर्म समझ कर (बलि इत्यादि) पशु वध करना, शिकार खेलना, यह सब संकल्पी हिंसा है। गृहस्थ को केवल इसी हिंसा का त्याग करना चाहिए। आगे लिखी तीन तरह की हिंसा से गृहस्थ बच नहीं सकता इस लिए उस को उन का त्याग करने की आवश्यकता नहीं है।

(२) उद्योगी हिंसा–खेती, व्यापार, कल-कारखाने आदि के चलाने में जो हिंसा अपने आप हो जाती है उसे गृहस्थ कर सकता है।

(३) विरोधी हिंसा—शत्रु से लड़ने में, अन्यायी को दण्ड देने में जो हिंसा होती है उसे विरोधी हिंसा कहते हैं। गृहस्थ का कर्त्तव्य है कि रण में शत्रु सामने हो, अथवा कोई देश की उन्नति में बाधक हो. जो अन्याय पर तुला हो, उस के विरुद्ध अपनी और देश की रक्षा के लिए वीरता से शस्त्र उठाए। परन्तु दीन

हीन और साधु पर कभी शस्त्र नहीं उठाना चाहिए।

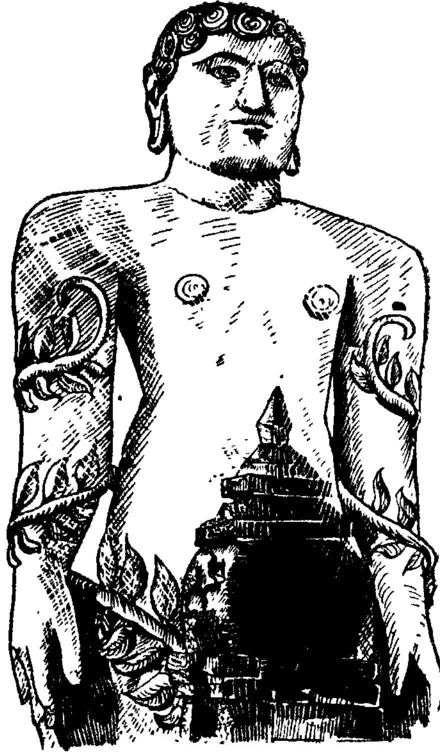
(४) आरम्भी हिंसा—घर गृहस्थी के चलाने में, सफाई करने में, मकान आदि बनवाने में जो हिंसा होती है उसे आरम्भी हिंसा कहते हैं और गृहस्थ इस हिंसा का भी त्यागी नहीं होता।

हिंसा के इन भेदों को भली भांति समझ लेना चाहिए अन्यथा गलत धारणाओं में पड़ कर आदमी पथ भ्रष्ट हो जाता है। गृहस्थ वीर, तेजस्वी और शूर वीर होता है। वास्तव में तो हिंसक वह है जो अन्याय को चुपचाप सह लेता है क्यों कि उस से अन्याय फैलता है और अहिंसा बढ़ती है। जब कोई शान में अन्धा हो कर दूसरों को सताता है, शिकार खेलता है, देवी-देवताओं के नाम पर प्राणियों का वध करता है तब वह हिंसक कहलाता है।

सच्चा अहिंसक ही वीर, उदार और कर्त्तव्य पालन करने वाला होता है। वही स्वयं सुखी रह कर दूसरों की भलाई करने में सफल होता है।



विषय सूची-भाग द्वितीय



गोम्मटेश्वर (बाहुबली)

बारह भावनाएँ

हम जो
भी काम
करते हैं, मन
में किसी भावना
को लेकर करते
हैं। यदि कोई
भी काम करने
से पहले हम यह
सोच लें कि यह कैसे होगा और इसका क्या फल
होगा तो बहुत से बुरे काम करने से हम बच
जाएंगे। अपने मन में किसी वस्तु का
विचार करना और यह चाहना
करना कि ऐसा हो उसी को
भावना कहते हैं। शुभ
भावना भाने से अथवा
अच्छे विचार उत्पन्न करने से
मन और आचरण शुद्ध होते हैं।
ऐसी शुभ भावना प्रधानता बारह हैं

(१) अनित्य भावना

राजा राणा छत्रपति, हथियन के अस्वार,
जाना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार।

नर नारी धन धान्य स्त्री पुत्र सब ही संसार के पदार्थ नष्ट होने वाले हैं। जब देवी-देवता, इन्द्र, चक्र-वर्त्ती सम्राट् कोई न रहा, तो न मेरा शरीर रहेगा, न संसार में और जो कुछ है वह रहेगा। इस भावना से सांसारिक वस्तुओं से मोह हटता है और आत्मा शुद्ध होती है क्योंकि वही सदा से है और सदा रहने वाली है।

(२) अशरण भावना।

दलबल देवी देवता, मात-पिता परिवार,
मरती बिरियां जीव को, कोई न राखन हार।

मनुष्य को सांसारिक दृष्टि से अपने प्रियजन सुख-दुःख के साथी मालूम पड़ते हैं परन्तु वास्तव में जीव अपने सुख-दुःख स्वयं भोगता है। देवी देवता, यन्त्र-मंत्र, माता-पिता, पुत्र मित्र कोई भी दूसरे जीव को सुख-दुःख भोगने से नहीं बचा सकता। अतः किसी पर भी निर्भर न रह कर शुभ कर्म कर के जीव को स्वयं ही अपना कल्याण करना चाहिए।

(३) संसार भावना

दाम बिना निर्धन दुःखी, तृष्णावश धनवान,
कहूं न सुख संसार में, सब जग देखो छान।

यह संसार दुःखों की खान है। बिना पैसे के निर्धन दुःखी रहता है और जिसके पास पैसा है वह इस चिन्ता में कष्ट सहता है कि और कैसे पैदा करे। कहीं संसार में सुख होता तो चक्रवर्त्ती सम्राट्, राजा महाराजा भी संसार छोड़ कर सन्यास क्यों लेते और क्यों वैराग्य धारण करते ? अतः सांसारिक वस्तुओं में तृष्णा न बढ़ा कर संतोष के द्वारा सुख-शान्ति प्राप्ति को लक्ष्य बनाना चाहिए।

(४) एकत्त्व भावना

आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय,
यों कबहूं इस जीव को, साथी सगा न कोय।

अशरण भावना से मिलती-जुलती ही यह एकत्त्व भावना है—यह जीव अकेला ही आया था और अकेला ही जाएगा। सहानुभूति दिखाने मात्र के लिए अपने पराए बनते हैं परन्तु वास्तव में किसी का दुःख कोई नहीं बंटा सकता।

(५) अन्यत्व भावना

जहां देह अपनी नहीं, तहां न अपना कोय,
घर सम्पत्ति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय।

जिस प्रकार म्यान में रहने वाली तलवार म्यान से अलग है, उसी प्रकार शरीर रूपी म्यान में रहने वाली आत्मा भी शरीर से अलग है। आत्मा स्वाधीन और चेतन स्वरूप है और शरीर जड़ और इन्द्रियों के आधीन है। जब यह अपना शरीर ही अपना नहीं और इसे भी छोड़ कर जीव को एक दिन जाना है तो संसार में और कौन सी वस्तु अपनी हो सकती है ?

(६) अशुचि भावना

दिपे चाम चादर मढ़ी, हाड़ पिंजरा देह,
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिन गेह।

जहां आत्मा निर्मल और ज्ञानमय है वहां यह शरीर हड्डी मांस आदि का पिण्ड है। जैसे कोयले को कितना ही साफ करो उसकी कालिमा नहीं जाती, उसी प्रकार इस शरीर की चाहे जितना साज-सज्जा करो यह सदा अपवित्रता से ही भरा रहेगा। अतः शरीर को सुन्दर बनाने के बजाए आत्मा को सुन्दर बनाने का प्रयत्न करो।

(७) आस्रव भावना

मोह नींद के जोर, जगवासी घूमें सदा,
कर्म चोर चहुं ओर, सरबस लूटे सुध नहीं ॥

अपने ही मोह, निद्रा और कषाय के वश जीव संसार में भटकता फिरता है। ये कर्म जो आत्मा से चिपक कर बैठ जाते हैं यह उसको बराबर लूटते रहते हैं अर्थात् उसके ज्ञान को चुरा कर उसका विकास नहीं होने देते।

(८) संवर भावना

पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच परकार,
प्रबल पंच इन्द्री विजय, धार निर्जरा सार।

पांच व्रतों के द्वारा, तथा दस धर्मों के द्वारा ही इन कर्मों को आत्मा से चिपकने से रोका जा सकता है। इन्द्रियों को वश में रखो, चार कषायों से बचो तो आत्मा भी कर्म बंधन से बची रहेगी।

(९) निर्जरा भावना

ज्ञानदीप तपतेल भर, घर शोधे भ्रम छोर,
या बिध बिन निकसे नहीं, बैठे पूरब चोर।

संवर भावना से कर्मो का चिपकना तो रोका जा सकता है परन्तु जो कर्म पहले ही आत्मा से चिपके हुए

हैं उन्हें भी तो निकालना है। इसी का नाम निर्जरा है। जहाज में यदि छेद हो जाए और पानी घुसने लगे तो चतुर नाविक पहले छेद को बन्द करके और अधिक पानी घुसने को रोकता है यानी संवर करता है फिर अन्दर आये हुए पानी को उलीच कर बाहर फेंकता है अर्थात् जहाज़ की पानी से निर्जरा करता है। तो आत्मा रूपी घर में कर्म रूपी चोर जो पहले से घुसे बैठे हैं ज्ञान रूपी दीपक जला कर तथा तप रूपी तेल के द्वारा ढूँढ़-ढूंढ़ कर उन चोरों को वहां से निकालो।

(१०) लोक भावना

किनहूं न करै न धरे को, षटद्रव्यमयी न हरै को।
सो लोक माहि बिन समता, दु:ख सहेजीव नितभ्रमता।।

यह संसार जीव, अजीव, धर्म, अधर्म, आकाश आदि द्रव्यों से बना नित नया रूप बदलता रहता है। इसे न किसी ने बनाया है, न कोई इसकी रक्षा करता है और न कोई इसका विनाश करता है।

(११) बोधि दुर्लभ भावना

धन, कन, कंचन, राज सुख, सबहि सुलभ कर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान।।

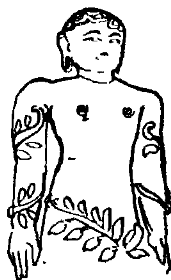
संसार में सभी वस्तुएं फिर भी आसानी से मिल

सकती हैं परन्तु निर्मल ज्ञान ही एक ऐसी वस्तु है जिस को पाने के लिए बड़ा भारी परिश्रम करना पड़ता है।

(१२) धर्म भावना

जाए सुरतरु देयसुख, चिंतन चिंता रंन ।
बिन जाए बिन चिंतए, धर्म सकल सुख दैन ।।

कल्पवृक्ष और चिंतामणि तो मांगने से ही मनोवांछित पदार्थ देते हैं परन्तु धर्म तो प्राणी को बिना मांगे ही सब सुखों का देने वाला है। इसलिए धर्म सेवन ही सब सुखों के लिए उत्तम साधन है।



चार पुरुषार्थ

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, ये चार पुरुषार्थ हैं। पहले तीन पुरुषार्थो को त्रिवर्ग कहते हैं। गृहस्थ को इस त्रिवर्ग का सेवन करना चाहिए। आत्मा के स्वाभाविक गुणों तथा सदाचार को धर्म कहते हैं। और इन्हीं शुभ कर्मो के करने से धन लाभ होता है जिसके द्वारा सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति होती है और जिसे अर्थ कहते हैं। सांसारिक वस्तुओ के प्राप्त होने से हमारी पन्चेन्द्रियों को तृप्त करने का साधन जुटता है। अर्थात् सांसारिक सुख के लिए धन आवश्यक है और धन के लिए धर्म या शुभ कर्म आवश्यक हैं। धर्म को छोड़ देने से अर्थ संचय नहीं होगा और अर्थ के बिना काम या सांसारिक सुखों की प्राप्ति नहीं होगी। इसलिए गृहस्थ को क्रम से इन तीनों बातों पर ध्यान देना चाहिए। सच्ची भक्ति, सच्चे ज्ञान और उत्तम चरित्र के द्वारा धर्म बढ़ता है, जब धर्म बढ़ता है तो उससे अर्थ

भी बढ़ता है और अर्थ बढ़ने से काम सेवन के साधन बढ़ते हैं। इस तरह सांसारिक सुख भी बिना धर्म के प्राप्त नहीं होते।

यदि धर्म का विचार न रख कर किसी भी तरह न्याय-अन्याय पूर्वक अर्थ संचय करने में लग गए तो वह उन्नति नहीं अवनति का कारण बन जाएगा और जीवन में असंतोष और चिन्ता के शिकार होकर सदा दुःखी जीवन के भागी बनोगे।

सांसारिक सुख भोगना पाप नहीं होता परंतु उसकी सीमा का उलंघन करना ही पाप है। धन कमाना पाप नहीं परंतु उसको अन्याय से, बेईमानी से अथवा धोखाधड़ी से कमाना पाप है। इसलिए नागरिकता, स्वास्थय और मर्यादा का ध्यान रख कर ही सुख भोगने चाहिए।

त्रिवर्ग पुरुषार्थो का सेवन करते रह कर गृहस्थ को अपना ध्येय चौथे पुरुषार्थ अर्थात् मोक्ष को ही अपना अन्तिम लक्ष्य समझना चाहिए। आत्मा की निमलता पर ध्यान रखना चाहिए और यह समझना चाहिए कि मोक्ष ही मानव जीवन का अन्तिम उद्देश्य है।

चारों पूरुषार्थों के द्वारा हो मनुष्य सन्मार्ग पर चल सकता है और अन्त में मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

सम्राट खारवेल

कलिङ्ग प्रदेश जिसे हम आजकल उड़ीसा कहते हैं, सम्राट अशोक के आक्रमण से पराधीन हो गया था। कलिङ्ग की प्रजा ने बड़ी वीरता से सम्राट अशोक के बड़े भारी आक्रमण का सामना किया परंतु उस भीषण युद्ध में उनके एक लाख योद्धाओं की जान गई और कई लाख सैनिक घायल होकर या तो अपंग हो गए या रोगग्रस्त हो गए। तब कहीं अशोक कलिङ्ग को अपने साम्राज्य में मिला सका। परंतु कलिङ्ग वीर अधिक दिन तक पराधीन नहीं रह सके। सम्राट खारवेल को जन्म देकर उसके पराक्रम और भुजबल पर कलिङ्ग का शौर्य फूट पड़ा और अशोक के वंशज सम्राट सम्प्रति को लाचार होकर कलिङ्ग को स्वतंत्र करना पड़ा।

ईसा से दो शताब्दी पूर्व जबकि खारवेल अभी युवराज ही थे तो उन्होंने सुना कि वर्षों पूर्व मगध के राजा नन्दिवर्धन ने कलिङ्ग पर चढ़ाई की थी और राजकीय चिह्न कलिङ्ग जिन की मूर्ति विजय करके ले गया था। यह सुन कर उनका खून खौल उठा और उन्होंने प्रण किया कि मगध को परास्त करके जब तक कलिङ्ग जिन की मूर्ति वापस न ले आऊँगा चैन की नींद न सोऊंगा। अभी खारवेल किशोर ही थे परंतु उनके मस्तक पर अद्भुत तेज टपकता था। बालसूर्य की भांति मुख की शोभा बढ़ रही थी। मूंछें उभर भी न पाई थीं कि अंग-अंग से शूरवीरता झलकने लगी। बड़ी-बड़ी तेजस्वी आंखें, विशाल बाहु, ऊँचा ललाट और चौड़ा वक्षस्थल भविष्यवाणी कर रहे थे कि शीघ्र ही यह युवक आर्यावर्त्त का प्रतापी सम्राट होगा। शस्त्र और शास्त्र दोनों ही विद्याओं में निपुण वीर खारवेल अपनी बढ़ती हुई महत्त्वाकांक्षाओं के कारण धीरे-धीरे अपनी प्रजा में अत्यन्त लोकप्रिय बनता चला गया।

जैसे सिंह बिना राज्याभिषेक के ही अपने भुजबल और पराक्रम से जंगल का राजा बन जाता है उसी प्रकार अपने पौरुष और अतुल साहस के बल पर

खारवेल सिंह की तरह गरजने लगा। उसके सामने कठोर से कठोर शत्रुओं के भी छक्के छूटने लगे।

सम्राट खारवेल ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार मगध पर विजय प्राप्त कर कलिङ्गजिन की मूर्त्ति ही वापस नहीं प्राप्त की बल्कि मगध का समस्त गौरव धूल में मिला कर उस पर कलिङ्ग राज्य की विजय पताका फहराई।

यूनानी आक्रमणकारी दिमेत्रियस भारत को पंजाब, मथुरा, आयोध्या तक रौंदता हुआ पटना की ओर बढ़ने लगा। तब उस वीर केसरी, रणबांकुरे, युवकरत्न खारवेल ने उस विदेशी यवन को इस तरह खदेड़ कर बाहर निकाल दिया जैसे सिंह के भय से मृग, शृगाल आदि जानवर स्थान छोड़ कर भाग खड़े होते हैं।

मौर्यवंश का अन्तिम सम्राट वृहदरथ जब निर्बल हो गया तो उसके सेनापति पुष्यमित्र ने उसको मारकर गद्दी हथिया ली और स्वयं राजा बन बैठा। उसने शुंगवंश की नींव डाली और अश्वमेध यज्ञ की प्रथा का फिर से चलाया। पराक्रमी और नीतिप्रिय खारवेल को जब यह पता चला तो उसने मगध पर चढ़ाई कर के स्वामीद्रोही पुष्यमित्र को गद्दी से उतार कर कठोर दण्ड दिया।

इस प्रकार मातृभूमि के गौरव को रक्षा के लिए सम्राट खारवेल जीवन भर अपनी न्यायप्रियता, शूर-वीरता तथा देशभक्ति का परिचय देते रहे। भुवनेश्वर के पास खण्डगिरि की गुफाओं में चट्टानों पर अंकित सम्राट खारवेल की गौरव गाथाओं के लेख मिले हैं जो प्राचीनता और सुन्दरता में अशोक के शिला लेखों से कुछ ही कम दर्जे के गिने जाते हैं।



कर्म

प्राणी जो कर्म स्वयं करता है उन्हीं का अच्छा या बुरा फल वह भोगता है। एक पुरानी कहावत है "**जैसी करनी वैसी भरनी**" या "**जो जस करहि, सो तस फल चाखा**"

कर्म शब्द का प्रयोग क्रिया या किसी काम को करने के लिए भी उपयोग में आता है और भाग्य के उपयोग में भी। अच्छे कर्मों के द्वारा सौभाग्य का तथा बुरे कर्मों द्वारा दुर्भाग्य का निर्माण प्राणी स्वयं अपने आप करता है।

पहले एक अध्याय में हम पढ़ चुके हैं कि शुभ या अशुभ कर्म आत्मा के प्रदेशों में चिपक जाते हैं और वही शुभ या अशुभ कर्म आगे चल कर जीव को सुख या दु:ख पहुंचाने वाले सौभाग्य या दुर्भाग्य का कारण बनते हैं। जैसे लोहे में चुम्बक खिच कर चिपक जाता है वैसे ही कर्म खिच कर आत्मा में चिपक जाता है

और उसके असली ज्ञान स्वरूप को ढक लेता है। कर्मों के योग से आत्मा का स्वरूप खोट मिले हुए सोने के समान हो जाता है। खोट और सोना अलग भी नहीं होते, न ही वह सोने का असली रूप रह जाता है परन्तु फिर भी सोना और खोट मिलकर कोई तीसरी वस्तु नहीं होती। उसको तपा कर शोध कर खोट को निकाल कर फेंक दिया जाता है तो सोना फिर अपने असली रूप में आ जाता है।

जीव में हर समय काम, क्रोध, मद, माया, लोभ, राग, द्वेष, भय, शोक, घृणा इत्यादि कषाय आते जाते रहते हैं। जब इन की तीव्रता होती है तो आत्मा के प्रदेशों में एक तरह की हलचल मच उठती है और उस समय उस की आकर्षण शक्ति उतनी ही तीव्र हो उठती है। ऐसी दशा में जब कर्म आत्मा से चिपकते हैं तो वे अधिक मजबूती से चिपकते हैं और बड़ी कठिनाई से दूर हो पाते हैं इन कर्मों का असर अपने निश्चित समय पर उभरता है और जीव को शुभ या अशुभ कर्मों के अनुसार अच्छा या बुरा फल चखाता है। वेदान्त और भगवत् गीता के अनुसार भी मनुष्य अपने अच्छे बुरे भाग्य का निर्माण स्वयं अपने ही कर्मों के द्वारा करता है।

कर्म आठ प्रकार के माने गए हैं :—

(१) **ज्ञानावरणकर्म**–ऐसे काम करने को जिस के द्वारा आत्मा के ज्ञान स्वरूप पर परदा (आवरण) पड़े ज्ञानावरण कर्म कहते हैं और उस की गिनती अशुभ कर्म में होती है। और जिस काम के करने से आत्मा के ज्ञान स्वरूप का विकास हो वह शुभ कर्म है।

(२) **दर्शनावरणकर्म**–जिस तरह मनुष्य नींद में रह कर जिन्दा रह कर भी चेतन नहीं रहता उसी तरह दरशनावरण कर्म के द्वारा आत्मा के चैतन्य गुण पर परदा (आवरण) पड जाता है। जिन से ऐसे दर्शनावरण कर्म संचित हों वे अशुभ कर्म हैं और जिन से वह अलग हों वे शुभ कर्म है।

(३) **मोहनीयकर्म**–यह कर्म जीव में मोह अर्थात उसकी रुचि व चरित्र में अविवेक, विकार या उल्टा स्वभाव पैदा करने वाला होता है। जो भी काम हम करते हैं वह हमारी मनोवृत्ति के द्वारा ही पैदा होता है। मोह के वश होकर जो व्यक्ति भले-बुरे का ज्ञान खो कर अनर्थ कर बैठता है उस को मोहनीय कर्म का बन्ध होता है। मोहनीय कर्म के दो रूप मुख्य हैं : एक तो राग यानि किसी चीज़ या व्यक्ति से बहुत

ज्यादा प्यार या लगाव होना और दूसरा द्वेष यानि किसी वस्तु से घृणा या व्यक्ति से बैर।

(४) **अन्तरायकर्म**–जो व्यक्ति काम को करने में बुरी भावना से अड़चन डालता है वह अन्तरायकर्म का भागी बनता है। जैसे कोई व्यक्ति दान दे रहा है और तुमने भांजी मार कर उसको ऐसा करने से रोक दिया, या कोई व्यक्ति खाना खाने बैठा और तुमने द्वेष वश उसका खाना उठा कर फेंक दिया तो वह अन्तराय कर्म होगा। ऐसे कर्मों का फल यह मिलता है कि आगे चल कर भोगोपभोग में भी इसी तरह की रुकावटें पड़ती हैं। कहीं देखा होगा कि किसी व्यक्ति के पास बहुत स्वादिष्ट भोजन तो है परन्तु वह खा नहीं सकता क्यों कि उसके पेट में बीमारी लग गई है, बेचारा मन मार कर रह जाता है तो यह अन्तुराय कर्म का ही फल होता है।

(५) **वेदनीयकर्म**–साधारण उपयोग में वेदना शब्द का अर्थ कष्ट या दु:ख लिया जाता है परन्तु वास्तव में सुख या दु:ख दोनों के ही अनुभव को वेदन कहा गया है। इसीलिए एक साता वेदनीय कर्म है यानि सुख पहुंचाने वाला जिसे शुभ कर्म माना गया है और

दूसरा असातावेदनीय यानि दुःख पहुंचाने वाला जिसे अशुभ कर्म माना गया है।

(६) **आयुकर्म**—जिस कर्म के उदय से जीव की आयु निर्धारित होती है उसे आयुकर्म कहते हैं। जैसे कुत्ते की आयु दस वर्ष की बंधी, मनुष्य की आयु सौ वर्ष की बंधी या कोई बालपन में ही मर गया—यह सब आयुकर्म का फल समझना चाहिए।

(७) **गोत्र कर्म**—लोक व्यवहार में ऊंचे नीचे कुल में जन्म लेना गोत्र-कर्म का फल है। गोत्र-कर्म के अनुसार कोई तो ऐसे कुल में जन्मता है कि उसका सब जगह आदर होता है और कोई ऐसे कुल में जिसका कोई आदर नहीं करता।

(८) **नाम कर्म**—शरीर की रचना सुन्दर हो या कुरूप, बुद्धिमान हो या बुद्धिहीन, शरीर के अंग टेढ़े-मेढ़े हों या सुडौल, शरीर स्वस्थ हो या उसमें वात्त, पित्त, कफ, आदि से विकार पैदा हों, मनुष्य संसार में कीर्ति पैदा करता है या बदनामी, यह सब नामकर्म के फल के अनुसार होता। जिस कर्म के उदय से जीव को त्रिलोकपूज्य तीर्थंकर पर्याय प्राप्त होती है वह तीर्थंकर प्रकृति नामकर्म के ही फल स्वरूप होता है।

दश धर्म

जीव को उन
भावनाओं और
क्रियाओं का नाम
धर्म है जिनसे
वह सुखी होता
है और जिनसे
वह दु:खी होता
है वह अधर्म है । धर्म
के दश भेद माने गए हैं:—
(१) **क्षमा**—किसी भी अवस्था
में किसी भी जीव को कष्ट पहुचाने
की दुर्भावना मन में न लाना और
क्रोध न करना क्षमाधर्म के
लक्षण हैं। (२) **मार्दव**–
अपने घमण्ड के वश
किसी को अपमा-
नित करने की दुर्भावना मन में न लाना
और विनयशील बनना मार्दव धर्म है।

(३) **आर्जव**--कपट न करना, धोखा-धडी न करना, सरल और शुद्ध चरित्र रखना आर्जव धर्म कहा गया है।

(४) **सत्य**--सत्य धर्म के अनुसार केवल दुर्भावना से झूठ ही नहीं बोलना चाहिए बल्कि ऐसी बात कहना भी कि जिससे दूसरे को दुःख पहुंचे असत्य ही कहा जाएगा चाहे यथार्थ में वह बात ठीक ही हो—जैसे काने को काना कहना। इसके विपरीत यदि गलत बात ऐसी भावना से कही गई हो कि उससे किसी का कष्ट निवारण होता हो या किसी की जान बचती हो तो वह भी असत्य नहीं कहा जाएगा परंतु उसमें स्वार्थ भावना नहीं होनी चाहिए।

(५) **शौच**--मन को मलिन बनाने वाली दुर्भावनाएं जिनमें लोभ सबसे अधिक बुरा करने वाला है, ऐसी भावनाओं को जीत कर मन को पवित्र रखना शौच धर्म है।

(६) **संयम**--इन्द्रियों के विषयों की ओर से मन को हटाना और मन को अच्छे काम की तरफ लगाना सयम धर्म है। जीवन निर्वाह के लिए जितना आवश्यक है उससे अधिक विषयभोगों में मन को लगाने से संयमधर्म नष्ट होता है।

(७) **तप**---कर्मों को काटने के लिए और आत्मा को विशुद्ध बनाने के लिए जो पुरुषार्थ या श्रम किया जाता है उसे तपधर्म कहते है। यह जरूरी नहीं है कि तप करने के लिए संसार से संन्यास लिया जाए। किसी सीमा तक गृहस्थ भी सांसारिक काम करते रहकर भी तपधर्म का पालन कर सकता है। व्रत-उपवास आदि की गणना तपधर्म में ही होती है।

(८) **त्याग**---बिना किसी बदले या स्वार्थ की भावना के आहार दान, विद्या दान, अभय दान व औषधिदान करना त्यागधर्म कहलाता है। दान देने से मुझे स्वर्ग मिलेगा, या समाज में मेरा नाम होगा या पत्थर पर खुदवा कर किसी भवन पर मेरा नाम लिखा जाएगा, ऐसी भावना से दिया गया दान त्याग धर्म को दूषित करता है अतएव दान में निःस्वार्थ भावना प्रधान है।

(९) **अकिंचन**---घर-द्वार, धन-दौलत, शत्रु-मित्र सबसे अपनापन छोड़ना और यह समझना कि यह मेरे नहीं हैं यहां तक कि यह शरीर भी मेरा नहीं है और एक दिन मुझसे छूट जाएगा ऐसा भाव मन में पैदा करना अकिंचन धर्म कहलाता है।

(१०) **ब्रह्मचर्य**--मन में राग पैदा करने वाले वातावरण में रहकर भी मन में कामवासना को न पैदा होने देना ब्रह्मचर्य है।

इन दश धर्मों के पालन से आत्मा मलिन नहीं होती, व्यक्ति चरित्रवान और अच्छा नागरिक बनता है।



रत्नत्रय

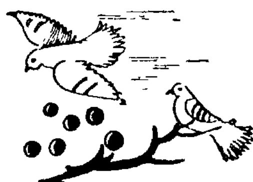
मनुष्य जीवन का ध्येय है कि मैं ऐसे रास्ते पर चलूं जिससे कि मेरी आत्मा संसार के आवागमन से छूट जाए और मुझे मुक्ति मिल जाए। जो रास्ता जीव को मोक्ष या मुक्ति की ओर ले जाए उसी को मोक्षमार्ग कहा जाएगा। रत्नत्रय ऐसा ही मोक्षमार्ग है। इसके तीन अंग हैं: (१) सम्यक-दर्शन अर्थात् सच्ची धार्मिक दृष्टि जिसे हम धर्म में अथवा धर्म की ओर ले जाने वाले साधुमहात्माओं में श्रद्धा और भक्ति के नाम से भी वर्णन करते हैं। जो व्यक्ति यह समझ लेता है कि सच्चा धर्म

क्या है और उसमें श्रद्धा और भक्ति बढ़ाता है उसे हम सम्यक्दृष्टि कहते हैं। धर्म के सम्बंध में शंकाएं बनाए रखना, या धर्म के बहाने अपनी स्वार्थ सिद्धि का भाव रखना, धर्मोपदेश व धार्मिक कार्यों से घृणा करना या उनकी निंदा करना या बुरी प्रवृत्ति वाले देवादि में भक्ति रखना ये सम्यक्दर्शन को दूषित करते है अतः इनसे बचना चाहिए।

(२) सम्यक्ज्ञान—सम्यक्दर्शन के द्वारा जिस व्यक्ति का मन सच्ची श्रद्धा के द्वारा सच्ची बातों के ग्रहण करने के लिए तय्यार हो जाता है वह व्यक्ति पदार्थों का सच्चा स्वरूप समझने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार जो सच्चा या ठीक ज्ञान उसे प्राप्त होता है उसे सम्यक ज्ञान कहते है। सच्चा ज्ञान चार भांति से प्राप्त होता है : **(क)** चक्षुदर्शन के द्वारा अर्थात् हम जो कुछ देखते हैं उसे ठीक वैसा समझ लेते हैं जैसा उसका स्वरूप है ; **(ख)** अचक्षुदर्शन के द्वारा अर्थात् वह ज्ञान जो हमें आंखों के अलावा चार इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त होता है यानि सूंघ कर, चख कर, सुन कर या छू कर ; **(ग)** अवधिदर्शन अर्थात् वह ज्ञान जो बिना इन्द्रियों की सहायता से प्राप्त होता है। जैसे किसी व्यक्ति को अपने पूर्व जन्म का ज्ञान स्वयं

ही हो जाए। इस ज्ञान का सम्बंध बुद्धि और आत्मा के स्वयं के ज्ञानगुण से सम्बंधित है इन्द्रियों से नहीं ; (घ) केवलदर्शन के द्वारा अर्थात् जब आत्मा में वह शक्ति उत्पन्न हो जाती है कि उसे भूत, भविष्य और वर्त्तमान तीनों कालों में जो कुछ भी जानने योग्य है स्वयं ही साफ दिखने लगता है तो हम कहते हैं कि उसको केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई।

(३) सम्यक्‌चारित्र—मोक्षमार्ग की तीसरी सीढ़ी सम्यक्‌चारित्र है अर्थात् सच्चा ज्ञान प्राप्त होने से जो आत्मा को निर्मल बनाने का भाव पैदा हो जाता है उससे अशुभ क्रियाओं से बचना और शुभ क्रियाओं में लगना। पूर्व अध्यायों में वर्णित, सप्तव्यसनों से बचना, पांचों अणुव्रतों का पालन करना इत्यादि क्रियाएं सम्यक्‌चारित्र ही हैं।



यमपाल चाण्डाल

किसी
समय काशी
नगरी में पाक
शा स न ना म क
राजा राज्य करता
था। एक बार नगर
में महामारी फैल
गई इस लिए
राजा ने यह
घोषणा कर-
वा दी
कि कोई भी व्यक्ति जीव हिंसा न करे और
न ही मांस भक्षण करे। इस राजाज्ञा
का उलंघन करने वाले के लिए प्राण
दण्ड की सजा निर्धारित की गई।
उसी समय उस नगरी में एक
सेठ का पुत्र रहता था जिस
का नाम धर्म था परंतु

था वह अत्यन्त हिंसक और पापी। एक दिन भी वह बिना मांसाहार किए नहीं रह सकता था। अतः उस ने चोरी से राजा के बाग में एक भेड़ को मार डाला और उस का कच्चा ही मांस खा गया।

संयोग से राजा को धर्म के कुकृत्य का पता चल गया उस ने गुप्तचरों के द्वारा इस अपराध की पुष्टि भी करवा ली। गुप्तचरों ने यह भी बताया कि धर्म ने भेड़ को मार कर उस का कच्चा मांस तो खा लिया और उस की हड्डियां गढ़ा खोद कर गाड़ दीं। जहां गुप्तचरों ने बताया था वहीं वे भेड़ की हड्डियां खुदवा कर निकलवाई गईं। इस तरह धर्म का अपराध बिना संदेह प्रमाणित हो गया। अतः पूर्व घोषणा के अनुसार राजा ने धर्म को पकड़वा मंगाया और उस को प्राण दण्ड की आज्ञा दे दी।

प्राण दण्ड का काम नगर में यमपाल नामक चाण्डाल के द्वारा पूरा किया जाता था इस लिए राजाज्ञा पा कर नगर कोतवाल ने यमपाल को बुलाने के लिए सैनिक भेजे। कुछ ऐसा संयोग हुआ कि उस दिन चतुर्दशी थी और यमपाल ने किसी पहुंचे हुए मुनि के उपदेश से प्रभावित हो कर चतुर्दशी के दिन हत्या न करने की प्रतिज्ञा कर ली थी। जब यमपाल ने

सुना कि उसी चतुर्दशी के दिन धर्म को प्राण दण्ड देने के लिए सैनिक उसे बुलाने आ रहे हैं तो वह घर में छिप कर बैठ गया और अपनी पत्नी से कह दिया कि सैनिक आएं तो कह देना कि यमपाल घर में नहीं है।

थोड़ी देर में राजा के सैनिक द्वार पर आए और उन्होंने यमपाल को आवाज दी। यमपाल की स्त्री बाहर आई और उस ने कह दिया कि वे घर पर नहीं हैं, नगर से बाहर गए हैं। यह सुन कर सैनिकों ने कहा कि देखो यह यमपाल भी कितना अभागा है, इसे आज ही बाहर जाना था। आज तो एक बड़े धनी सेठ के लड़के को फांसी लगनी है और उस के सारे बहुमूल्य आभूषण और कपड़े यमपाल को ही इनाम में मिलते। परंतु यह सब तो उस के भाग्य में ही नहीं था नहीं तो वह आज ही बाहर क्यों जाता।

गहने और कपड़ों का नाम सुन कर स्त्री के मन में लोभ उमड़ पड़ा और उस ने चुपके से इशारे से सैनिकों को बता दिया कि यमपाल घर में छिपा बैठा है। बस स्त्री का इशारा पाते ही सैनिक उसके घर में घुस पड़े और जबरदस्ती पकड़ कर राज दरबार में ले गए। उसे जब धर्म को फांसी लगाने के लिए कहा

गया तो उस ने राजा से हाथ जोड़ कर बड़े विनय से क्षमा मांगी कि आज उसे फांसी लगाने के लिए विवश न किया जाए। राजा को उसकी बात पर बड़ा आश्चर्य हुआ और उस ने यमपाल से इसका कारण पूछा तो उस ने अपनी प्रतिज्ञा की बात राजा को सुना दी। राजा ने चाण्डाल की बात पर विश्वास नहीं किया और समझा कि यह सेठ से मिल गया है इस लिए मना कर रहा है। कहीं चाण्डाल भी ऐसी प्रतिज्ञा करते सुने गए हैं। इस से राजा का क्रोध भड़क उठ्ठा और उस ने यमपाल को भी राजाज्ञा का उलंघन करने का दोषी घोषित कर दिया। अतएव राजा की आज्ञा से धर्म के साथ यमपाल को भी हाथ पैर बांध कर मगरमच्छों से भरे हुए तालाब में फिंकवा दिया गया।

तभी एक विचित्र घटना घटी। धर्म को तो तालाब में गिरते ही मगरमच्छों ने देखते ही देखते चट कर डाला। परंतु यमपाल का बंधन टूट गया और देवताओं ने प्रकट हो कर उस के लिए एक सिंहासन बनाया और उस की पूजा की। धन्य है यमपाल जिस ने चाण्डाल हो कर भी अपने प्राण तक दे कर अपने व्रत की रक्षा की। देवताओं ने उस पर फूल बरसाए।

अनेकान्त अर्थात् स्याद्वाद

बोलचाल में हम
जब किसी
वस्तु का
वर्णन करते हैं
तो केवल उस के एक ही
गुण को एक बार में कह
पाते हैं। वह हमारा उस
वस्तु के प्रति दृष्टिकोण होता है।
जैसे देवदत्त को एक ही समय में
उसका पिता भी पुकारता है और पुत्र भी।
पिता देवदत्त को पुत्र कहता है और उसी
देवदत्त को उसका पुत्र पिता कहता है। इस
तरह देवदत्त न केवल पुत्र ही है और
न केवल पिता। वह एक ही समय
में पिता भी है और पुत्र भी।
उसके पिता ने जब उसे
पुत्र कह कर पुकारा
तो उसने ठीक ही

किया क्योंकि यह उसका दृष्टिकोण था। और जब उसके पुत्र ने देवदत्त को पिता कह कर पुकारा तो उसने भी अपने दृष्टिकोण से ठीक ही किया। यह दोनो बातें विरोधी दिखाई देने पर भी अपने-अपने स्थान पर सत्य हैं।

इस तरह प्रमाणित होता है कि किसी बात के अनेक दृष्टिकोण और किसी वस्तु के अनेक गुण हो सकते हैं। केवल अपनी ही बात पर अड़कर बैठ जाना बुद्धिमानी नहीं है। इसी का नाम अनेकान्त है। स्यात् शब्द का अर्थ है 'सम्भव है'। जब हम वाणी में इस शब्द का प्रयोग करते हैं तो हम स्याद्वाद का पालन करते हैं। जैसे किसी से पूछा गया कि क्या आप ज्ञानी हैं? तो उसने कहा "स्यात् ज्ञानी हूं भी और स्यात् नहीं भी हूं" तो उसने बुद्धिमानी का परिचय दिया। क्योंकि यदि पहले व्यक्ति के द्वारा पूछी गई बात का उसे ज्ञान हुआ तो उसके दृष्टिकोण से वह ज्ञानी प्रमाणित होगा और यदि उसकी बताई हुई समस्या को वह हल न कर सका तो उसके दृष्टिकोण से वह अज्ञानी प्रमाणित होगा। इस तरह वह स्यात् ज्ञानी है और स्यात् ही अज्ञानी भी। अनेकान्त शैली या स्याद्वाद के द्वारा कभी एक बात मुख्य होती है और कभी

दूसरी। जब वस्तु अनेक धर्मों या गुणों से पूर्ण प्रमाणित हो चुकी है और शब्दों में इतनी सामर्थ्य नहीं है कि उसके समस्त गुणों को समस्त दृष्टिकोणों से एक ही बार में कहा जा सके तो बिना अनेकान्त का सहारा लिए काम नहीं चलेगा। एकान्त की जिद पकड़ कर परस्पर विरोध और झगड़े पैदा हो जाएंगे।

अनेकान्त मनुष्य को भिन्न दृष्टिकोण से विचार करने की शिक्षा देता है। यूरोप के एक नगर में एक विशाल मूर्त्ति खड़ी थी। उसका आधा भाग सोने का बना हुआ था और आधा चांदी का। दोनों ओर से दो अश्वारोही आए। एक को वह चांदी की मूर्त्ति दिखाई दी और दूसरे को सोने की। पहले अश्वारोही ने कहा: "कितनी सुन्दर चांदी की मूर्त्ति है।" दूसरा बोला: "पागल हो गए हो, यह तो सोने की प्रतिमा है।" बस दोनों में झगड़ा होने लगा और लड़ते-लड़ते दोनों बेहोश होकर गिर पड़े। जब चिकित्सक ने उन्हें होश में लाकर झगड़े का कारण पूछा तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने उन दोनों से कहा कि भाई तुम मूर्त्ति का दूसरा भाग क्यों नहीं देखते। बस तुरंत उन दोनों को अपनी-अपनी भूल का पता चल गया। एकांत दृष्टि पर अड़ने से यही विरोध उत्पन्न हो जाता है।

वर्त्तमान युग में गांधी जी अनेकान्तवाद के मूर्त्तिमान अवतार थे। उन्होंने लिखा है कि मेरा अनुभव है कि मैं अपनी दृष्टि से सदा सत्य ही बोलता हूं किन्तु मेरे ईमानदार आलोचक तब भी मुझ में गलती निकाल लेते हैं। पहले मैं अपने को सही और दूसरों को अज्ञानी समझ लेता था किन्तु अब मैं मानता हूं कि अपनी-अपनी जगह हम दोनों ही ठीक है। अब मैं विरोधियों को प्यार करता हूं क्योंकि मैं अपने को अब विरोधियों की दृष्टि से भी देख सकता हूं।

सत्य के किसी एक पक्ष पर अड़कर झगड़ने लग जाना यह छोटे लोंगों का लक्षण है। सत्य के मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति हठी नहीं होता। गांधी जी हठी नहीं थे। ईसा मसीह हठी नहीं थे। उन्होंने कहा था कि मेरे पिता के यहां अनेक मकान हैं। मैं किसी भी मकान तो तोड़ने नहीं आया बल्कि सबकी रक्षा और पूर्णता ही मेरा उद्देश्य है। यह अनेकान्तवाद ही तो है। सहअस्तित्व, सहजीवन और पंचशील इन सब का आधार अनेकान्तवाद ही है।

जब तक संसार के विचारक और राजनीतिज्ञ स्याद्वादी भाषा और सिद्धान्त को नहीं अपनाएंगे, तब

तक न तो संसार के विभिन्न धर्मों में एकता होगी और न विश्व के विचार और मतवादों में सहनशीलता हो सकेगी। भारतवर्ष में अहिंसा साधना अनेकान्त के के आधार पर ही अपनी चरम सीमा पर पहुंची और इसी आधार पर अनेकानेक धर्मों का बिना विरोध समन्वय हुआ।



गृहस्थ धर्म

धर्म पालन के संबंध में तरह-तरह की गलत धारणाओं का अक्सर प्रचार होता रहता है। कोई कहता है यह सब पुराने युग की बातें हैं। वर्त्तमान समाज में इन बातों का कोई स्थान नहीं है। कोई कहता है कि युग बदल गया है, इस लिए धर्म की परिभाषा भी बदल गई है। कोई कहता है, धर्म की बातें बूढ़े रिटायर्ड फालतू आदमियों के लिए हैं। कोई कहता है अभी से धर्म कर्म की बातें सीख कर क्या जवानी में ही संन्यास लेना है। कोई कह देता है राजनीति और सामाजिक व्यवस्था में धर्म बाधक होता है। धर्म से आदमी कायर बन जाता है तथा राष्ट्र और समाज के प्रति

अपने कर्त्तव्य को छोड़ देता है। ये सब भ्रम मूलक बातें धर्म को न समझने के दोष से उत्पन्न होती हैं। भारतीय संस्कृति में धर्म को त्रिकाल सत्य माना गया है। हर परिस्थिति और हर अंग के लिए बड़ा व्यवहारिक दृष्टिकोण भारतीय संस्कृति में बताया गया है केवल उस को ठीक समझने की आवश्यकता है। धर्म के सही अर्थ समझ में आ जाएं तो वह व्यक्ति के चरित्र निर्माण में, उन्नतिशील समाज के संगठन में और राष्ट्र को सुदृढ़ और न्यायप्रिय बनाने में तो सब से अधिक सहायक होता ही है एवं व्यक्ति की आत्मा को शुद्ध करके उस की आध्यात्मिक उन्नति के लिए भी बड़ा प्रभावशाली कारण बन जाता है। बल्कि कहना तो यह चाहिए कि जीवन में अधार्मिक दृष्टिकोण ही व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और मानवता का अध:पतन होने का एकमात्र कारण है।

जिस तरह विद्या की सीढ़ियां एक कक्षा से दूसरी में, दूसरी से तीसरी में, क्रमश: बढ़ती चली जाती हैं उसी प्रकार धर्म संबधी ज्ञान और आचरण भी क्रमश: बढ़ता हुआ पूर्णता को प्राप्त होता है। अगर पहली कक्षा में पढ़ने वाले विद्यार्थी को पांचवीं कक्षा की पुस्तकें दे दी जाएं तो क्या होगा ? स्पष्ट है कि उस

की समझ में कुछ नहीं आएगा और वह उस को असम्भव कह कर उस का त्याग कर देगा। यही दशा आज हमारे देश में समाज की हो रही है। संन्यासियों और संसार से उदासीन व्यक्तियों के लिए जो धर्म की परिभाषा बनाई गई है यदि उन को गृहस्थियों के ऊपर लादने का प्रयत्न किया जाए तो उस से बजाए भलाई के बुराई पैदा होगी। हमारे नौजवान धर्म के नाम से चिढ़ने लगेंगे।

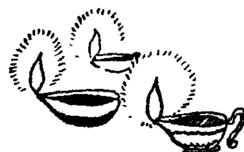
सनातन धर्म में मनुष्य की आयु को इसी दृष्टि-कोण को ले कर चार भागों में विभाजित किया गया था : ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वाणप्रस्थ और संन्यास। हर अवस्था में धार्मिक आचरण की अलग अलग व्यवस्था थी। कोई यह नहीं कहेगा कि गृहस्थ सत्य और न्याय को आधार रख धन और काम का सेवन करने से ही अधर्मी हो जाता है। बल्कि धर्म तो उस के विपरीत ही शिक्षा देता है—वह कहता है गृहस्थ रह कर गृहस्थों के समस्त उत्तरदायित्व जो नहीं निभाता वह गलती करता है, उस ने धर्म को गलत समझ लिया है। इसी लिए इस बात पर जोर दिया गया है कि सम्यक् दृष्टि हुए बिना न सम्यक् ज्ञान होगा और न सम्यक् चारित्र बन सकेगा।

गृहस्थ के लिए पांच व्रत मुख्य बताए गए हैं—अहिंसा, अमृषा, अस्तेय, अमैथुन और अपरिग्रह। इस का अर्थ है हिंसा मत करो, झूठ मत बोलो, चोरी मत करो, व्यभिचार मत करो और लालसा मत बढ़ाओ। इन व्रतों के स्वरूप पर भली भांति विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन का व्यवधान इस लिए किया गया है कि इन के द्वारा मनुष्य उन क्रियाओं से बचा रहे जो समाज में मुख्यरूप से वैर विरोध की जननी होती है। तो फिर इन के पालन से समाज की उन्नति होगी या अवनति ?

व्यक्ति जो भी काम करता है वह सब उस के स्वार्थ से प्रेरित होते हैं। उन क्रियाओं में कौन अच्छी है और कौन बुरी यह कोई न कोई नियम बनाने से ही निर्धारित किया जा सकता है। हिंसा, चोरी, झूठ, कुशील और लालसा ये सब सामाजिक अपराध ही तो हैं। जितने अंश में व्यक्ति इन का त्याग करेगा, उतना ही वह सभ्य और समाज हितैषी माना जाएगा और उतने ही अंश में समाज सभ्य, सुखी और प्रगतिशील बनेगा।

इन व्रतों पर अच्छी तरह से विचार करने से यह स्पष्ट दिखाई देगा कि उन को सब व्यक्तियों के लिए,

सब काल में, पूर्णतः पालन करना सम्भव नहीं है। इसी लिए परिस्थितियों, सुविधाओं तथा व्यक्ति की शारीरिक व मानसिक वृत्तियों के अनुसार उन का क्रमशः पालन करना चाहिए। सब से आवश्यक बात तो यह है कि उन का महत्त्व ठीक प्रकार से समझ लिया जाए। ऐसा व्यक्ति चाहे परिस्थितियों के कारण उन का पालन न कर सके परंतु वह धर्म के सही मार्ग पर चल पड़ा है। पहले यमपाल की कथा में देखा जा चुका है कि वह चाण्डाल का काम करते हुए भी एक धार्मिक व्यक्ति प्रमाणित हुआ। धर्म को ठीक से समझ लेने वाला व्यक्ति कभी न कभी चारित्रशुद्धि प्राप्त कर मुक्ति का अधिकारी हुए बिना नहीं रह सकता। परंतु साथ ही यह भी समझ लेना चाहिए कि स्वार्थ वश बहाने ढूंढ़ कर यह समझ लेना कि परिस्थिति वश हम ने चोरी, झूठ या ठगी की तो हम कुमार्ग पर चल पड़ेंगे। इस अतिचार से बचने के लिए सदा सावधान रहना चाहिए।



पुनर्जन्म

भारतवर्ष
में तो प्रायः सभी
धर्मों का आधार पुन-
र्जन्म माना गया
है । इस की
महत्त्ता को अन्य देशों के दार्शनिक भी मानने लगे हैं । क्योंकि बिना पुनर्जन्म का अस्तित्त्व माने काम नहीं चलता । यदि यह मान लिया जाए कि मनुष्य केवल इसी जन्म से सम्बंधित है तो बहुत सी ऐसी शंकाएं बन जाती हैं जिनका समाधान असम्भव हो जाता है ।

जीवन में बिना कारण के ऐसी अनेक घटनाएं हो जाती हैं कि बिना पुनर्जन्म का आश्रय लिए हुए उनको समझा नहीं जा सकता । प्राणी को विवश हो कर यह मानना पड़ता है कि पूर्व जन्म के कर्मो के फल स्वरूप ही वह घटित हो सकती हैं । पूर्वजन्म के संस्कार न हों तो संसार में सब जीवों का भाग्य एक सा होना चाहिए परंतु होता इसके बिल्कुल विपरीत है । यहां तक कि जुड़वां बच्चों के भी जीवन भिन्न दिशाओं में चलते हैं और उनका अपना-अपना भाग्य अलग ही प्रतीत होता है ।

इसके अतिरिक्त ऐसे भी अनेक उदाहरण मिले हैं

जिनमें किसी बालक अथवा बालिका ने स्वयं ही अपने पूर्वजन्म की घटनाएं और वर्णन प्रामाणिक रूप में बताए हैं। कुछ विश्वविख्यात दार्शनिक इन उदाहरणों का संकलन करके शोध कार्य में लगे हुए हैं।

जीव भांति-भांति से अपने संचित कर्मों के अनुसार विभिन्न योनियों में जन्म लेता हुआ सुख दुख भोगता रहता है। अतः शुभ कर्म करके जीव को अपना परलोक (आगामी जन्म) सुखमय बनाने का प्रयत्न करना अत्यन्त आवश्यक है। जो लोग केवल क्षणिक तृष्णा की शान्ति करने के उद्देश्य से शुभाशुभ का विवेक खो बैठते हैं, वे अशुभ कर्मों के द्वारा इस जीवन में भी शान्ति और संतोष नहीं प्राप्त करते और आगे चल कर अपना परलोक भी बिगाड़ लेते हैं। इस तरह कषाय के वश होकर ऐसे जीव अनन्त काल तक संसार के जाल में फंसे रहते हैं। उनकी आत्मा भटकती ही रहती है—उसे कभी शान्ति नहीं मिलती, उसकी कभी मुक्ति नहीं होती।

अतएव बुद्धिमानी इसी में है कि वर्त्तमान के संकुचित दायरे का विचार छोड़ कर यह समझना चाहिए कि सुख दुख का अनुभव मुझे अपने पूर्वजन्म में किए कर्मों का फल है और अब मैं ऐसे कर्म करूं कि जिनसे मेरा परलोक सुखमय हो।

दीपावली

दीपावली का उत्सव भारतवर्ष में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण त्योहार है जो उत्तर से दक्षिण तक, पूरब से पच्छिम तक सर्वत्र मनाया जाता है। यह उत्सव गरीब से गरीब और अमीर से अमीर सभी अपनी सामर्थ्य अनुसार बड़ी लगन और श्रद्धा से मनाते हैं। दीपावली उत्सव को मनाने के विभिन्न दृष्टिकोण हैं। कुछ लोग कहते हैं कि रावण पर विजय करके श्री रामचन्द्र अयोध्या लौटे थे और कार्त्तिक की अमावस्या को उनका राज्याभिषेक हुआ था

इसलिए उस दिन आयोध्या निवासियों ने नगर भर को दीपों से सजा कर अपने हर्ष का प्रदर्शन किया था। आर्यसमाज के लोग दीपावली को स्वामी दयानन्द निर्वाण दिवस के रूप में मनाते हैं। व्यापारी नया वर्ष आरम्भ करने के अभिप्राय से दीपावली पर लक्ष्मी पूजा करके दीप सजाते हैं। एक विश्वास यह भी है कि वर्षा ऋतु में बड़े जीव जन्तु, मच्छर इत्यादि पैदा हो जाते हैं अतएव दोपावली का आयोजन इसलिए किया गया कि मकान को वर्षा के बाद लीप पोत कर स्वच्छ कर दिया जाए और फिर कड़ुवे तेल के दीपक जला कर निवास स्थान को मच्छर और कीटाणुओं से भी मुक्त कर दिया जाय। सफाई और स्वास्थ्य की दृष्टि से यह एक बड़ी अच्छी दलील है और इसीलिए अधिकांश लोग बिजली या मोमबत्तियां न जला कर अब भी कड़वे तेल के ही दीप जलाते हैं।

परन्तु ये जितनी बातें हैं वे सब दीपावली मनाने के वर्त्तमान कारण या उसके पीछे वर्त्तमान भावना की ही ओर संकेत करते हैं। वास्तव में दीपावली का उत्सव भारतवर्ष में इतना प्राचीन है कि इसका कोई भी ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता कि यह क्यों और

कब से मनाया जाने लगा। इसीलिए इसका रूप एक होने पर भी भावनाएं अलग-अलग हैं। इसमें संदेह नहीं कि सफाई स्वास्थ्य के दृष्टिकोण के अतिरिक्त इस उत्सव के पीछे कोई धार्मिक भावना भी अवश्य है। इसीलिए सफाई सजावट के अतिरिक्त सर्वत्र पूजा की भी व्यवस्था अवश्य है वह चाहे जिस रूप में की जाती हो चाहे भगवान महावीर की पूजा हो, चाहे लक्ष्मी की पूजा हो, चाहे स्वामी दयानन्द की कीर्त्तन हो, चाहे गणेश की पूजा हो, हर घराने में किसी न किसी रूप में पूजा होती अवश्य है।

जहां तक शास्त्रों और पुराणों का सम्बंध है सबसे प्राचीन ग्रन्थ जिसमें दीपावली का प्रसंग मिल पाया है वह जिनसेन द्वारा लिखित हरिवंश पुराण है जिसकी रचना शक संवत ७०५ में हुई थी। उस में लिखा है कि महावीर का निर्वाण होने पर कार्तिक अमावस्या के दिन उनकी निर्वाण भूमि पावा नगरी में दीपमालिका उत्सव मनाया गया और देवों ने, राजा तथा प्रजा ने महावीर भगवान की आरती और पूजा की। उसी तिथि पर प्रति वर्ष इस उत्सव के मनाने की प्रथा चल पड़ी। इस से इतना तो अवश्य ही स्पष्ट है कि दीपावली का

उत्सव शक संवत ७०५ से भी कहीं पहले से भारतवर्ष में मनाया जा रहा है। इस के अतिरिक्त ११८० वर्ष पूर्व रचित इस ग्रन्थ में जो दीपावली का वर्णन किया गया है उस के विरुद्ध इतना पुराना कोई और विवरण भारतवर्ष के किसी प्राचीन ग्रन्थ में नहीं मिलता अतएव इसी को प्रामाणिक मान लेने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। इस तरह दीपावली का आरम्भ ईसा से लगभग ५३० वर्ष पूर्व हुआ मालूम होता है।

आरम्भ चाहे जो भी रहा हो दीपावली आज भारत का सर्वोत्तम त्यौहार है और इस को उसी शुद्ध भावना से मनाया जाना चाहिए जिस की व्यवस्था हमारे पूर्वजों ने की है। जुआ खेल कर जो लोग इस पुण्य त्यौहार को गन्दा बनाते हैं वह अशुभ कार्य तो करते ही हैं बल्कि आने वाली पीढियों के लिए भी एक गन्दी परिपाटी चलाते हैं। दीपावली का पुण्य त्यौहार घर शुद्धि, शरीर शुद्धि तथा मन शुद्धि के हेतु मनाया जाना चाहिए न कि जुआ, या आतिशबाजी जैसे गन्दे कामों के द्वारा।